सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री रामनवमी जन्मोत्सव विशेषांक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 54 : अंक : 01

अप्रैल 2021

प्रकाशन तिथि : 01.04.2021

मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 380/-

अमृतकण

जो मनुष्य अपने हित और भलाई की बात नहीं सुनता प्रत्युत अप्रसन्न होता है अथवा अपमान समझता है तो समझों वह सत्य प्रेमी नहीं चंचल स्वभाव है दृढ़ प्रतिज्ञ नहीं ऐसा मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता।

* * *

अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना त्याग का अभाव,क्रोध, स्वार्थ और मित्र द्रोह यह छः तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को घटाती है। जो संसार में अधिक जीना चाहते हैं, उन्हें इन छः दोषों से बचना चाहिये।

* * *

सम्पूर्ण सत्य को ग्रहण करने के लिये तुम्हें सांसारिक इच्छाओं का त्याग करना होगा तुम्हें सांसारिक राग-द्वेष से ऊपर उठना होगा। अपने उन सारे रिश्ते नातों को नमस्कार करना होगा जो तुम्हें बाँधकर गुलाम बनाते और नीचे घसीटते हैं, यही साक्षात्कार का मूल्य है। जब तक मूल्य अदा न करोगे सत्य को नहीं पा सकते।

* * *

पवित्र प्रज्ञा (बुद्धि) चिंतामणी के समान कल्पलता के समान मन चाहा फल देती है। श्रेष्ठ, पुरुष पवित्र प्रज्ञा के द्वारा संसार-सागर से पार हो जाता है ; किन्तु अधम मानव उसमें डूब जाता है।

* * *

अनन्य चेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:

तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्य युक्तस्य योगिन:।।

हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरे में अनन्य चित से स्थित हुआ । सदा ही निरन्तर मेरे को स्मरण करता है। उस निरन्तर मेरे से युक्त हुये योगी के लिये में सुलभ हूँ, अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

* * *

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :–शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 54 | अप्रैल 2021 | अंक : 01

गजाननं भूतगणादिसेवितं,
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणं।
उमासुतं शोकविनाशकारकं,
नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजं।।

अर्थात् – गज के समान मुख वाले, भूतगणों से सेवित, कपित्थ, जम्बू जिसका प्रिय भोजन है, पार्वती पुत्र, शोक विनाशक गणेश जी को मेरा नमन।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	14
4.	सोई जानई जेहि देहुं जनाई..(5)- जगदीश राए बंसल	17
5.	हम और हमारा स्वास्थ्य- श्री मूलशंकर वानप्रस्थी	21
6.	योग दर्शन का शिक्षा दर्शन- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा	27
7.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग- स्वामी विवेकानन्द	32
8.	श्रीमद्भगवद्गीता एवं कर्मयोग- श्री पूर्णचन्द्रपन्त शास्त्री	34
9.	एक अद्भुत कृपा-लीला- अन्तू राम यादव	41
10.	अजपा गायत्री मंत्र- मनमोहन कृष्ण त्रिखा	44
11.	साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर- श्री सद्गुरु देव जी द्वारा	46
12.	सिद्धयोग पत्रिका आय-व्यय (2020-2021)	56

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 380.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख

मेरे श्री गुरुदेव

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या हैं और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं– एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्माणित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के 17 वें अध्याय में कहा है :–

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।" इसके अतिरिक्त

यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है कि इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो-जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे-से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल-क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। इसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ-जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता-पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर-कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक-लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन-यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झार-खण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक

नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनि–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) **योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति**–इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी; निज निर्मित साधनों का प्रचार। इनमें उनका एक प्रमुख साधन था 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस

प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों को करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का आध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए।

इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1 : सर्वोत्तान – केवल तीन बार, समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।
2 : स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।
3 : पादचालन – आठ मिनट।
4 : नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।
5 : जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार, समय लगभग चार मिनट।
6 : बालमचलन – केवल एक मिनट।
7 : बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।
8 : नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।
9 : उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) **अमर तत्व साधन** – जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती

है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन को ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेति, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा कार्य उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) **शक्तिपात दीक्षा** – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है– सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते

ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वे लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा; ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी ख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं। वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।

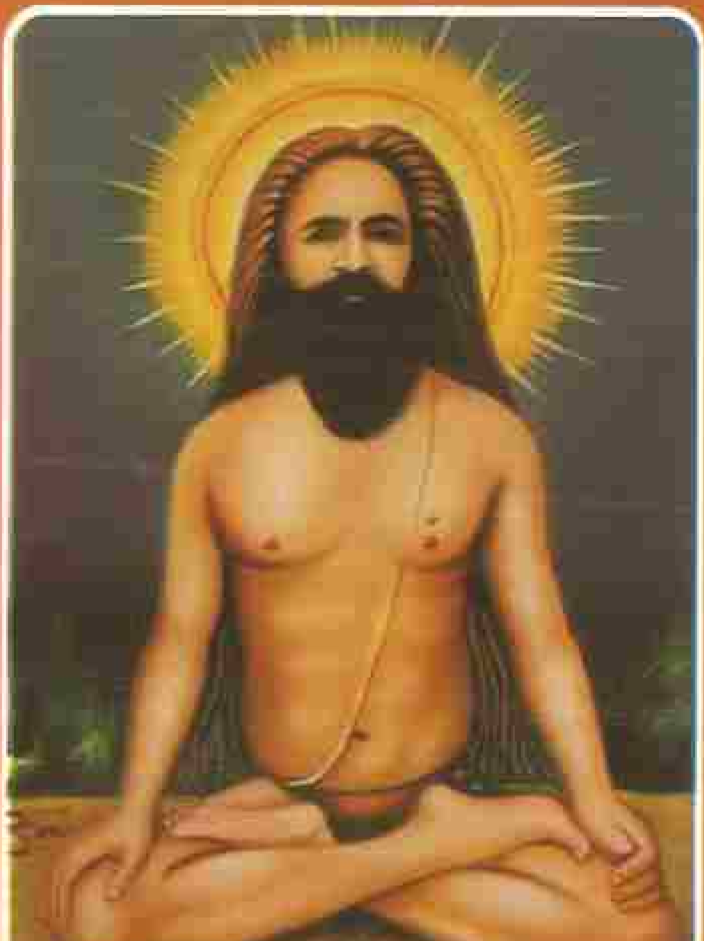

दादा गुरुदेव

योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज

से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जायेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे–से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण–कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान् ! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मै तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ–कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या–क्या कार्य किया, वह शनैः–शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

सम्पादकीय–

परम गुरुदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

–योगाचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

ईश्वर सर्वव्यापक और अनादि है। वह सृष्टि का सर्वप्रथम गुरु है। योग दर्शन में पतञ्जलिदेव जी महाराज ने **'सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** कहकर ईश्वर को सृष्टि का प्रथम गुरु कहा है। तीनों काल में विद्यमान रहने के कारण उनकी सत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहती है। वही ईश्वर समय–समय पर सगुण रूप में आकर प्रकट होते हैं और भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं–जैसा कि भगवान ने गीता के चौथे अध्याय में घोषणा की है। योग रूपी धर्म की स्थापना समय–समय पर प्रकट होकर करते रहते हैं। ईश्वर की भांति महायोगियों का चरित्र भी अलौकिक होता है, उनके चरित्र व इतिहास को जानना असंभव होता है। ऐसे योगी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय प्रकट होकर अपना अभीष्ट कार्य किया करते हैं। उनका जन्म और कर्म मानुषी बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता है। वे ईश्वर के तुल्य ही होते हैं। ऐसे ही एक महायोगी हुए हैं जो सृष्टि के अन्त तक हिमालय में अजर–अमर रहकर वास करते हैं तथा योग विधि से काय–निर्माण कर पृथ्वी पर आते रहते हैं जिनका परम पावन नाम महाप्रभु रामलाल है। वे एक ही समय में अनेक स्थानों पर काय–निर्माण से शरीर बनाकर योग विद्या के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकट होते रहते हैं। ऐसे योगियों के काय–निर्माण से कार्य करने की बात उपनिषदों में वर्णित है।

''अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणिधार येत्।'' अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न योगी नाना रूपों तथा नाना नामों से रहकर अपना अभीष्ट कार्य करते रहते हैं। ऐसे योगी अपने भक्तों के अविद्यादि क्लेश रूप दुःख द्वन्द्वों को मिटा देते हैं। योग ध्यान की विधि द्वारा भक्तों को पूर्णतया योग मार्ग में लगाने के लिए तीव्र शक्तिपात कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर, योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर, उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करा देते हैं। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि का बोध करा देते हैं।

आनन्दकन्द प्रभुजी बीसवीं सदी के सिद्ध योगियों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। जन्म से ही

उनकी योग शक्तियों का परिचय जन सामान्य को मिलने लगा था। मध्य युग में नाथ योगियों के चमत्कारिक विभूतियों से लोगों में योग विद्या के प्रति विश्वास एवं आकर्षण हो गया था। इस से धर्म एवं आध्यात्म के दिव्य ज्ञान का प्रचार किया गया। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ, शिवा योगी गोरक्ष नाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द एवं चौरासी सिद्धों के दिव्य चमत्कारों की गाथा भारत में फैली हुई है। वस्तुतः योग ही शाश्वत् जीवन की प्राप्ति का मार्ग है। इसी से जीव अखण्ड शान्ति तथा जन्म मरण के क्रम को तोड़ सकता है।

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने दिव्य शक्तिपात के द्वारा साधकों को योग की ऊँची–ऊँची भूमिकायें प्रदान की हैं। वहीं पर जन सामान्य के स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए दिव्य क्रियाओं को अपने मन से आविष्कार करके जीवन तत्व साधन के नाम से क्रियाओं का प्रचार–प्रसार जन सामान्य में किया है। ये क्रियायें स्वास्थ्य के साथ–साथ नाड़ी शोधन द्वारा मन की एकाग्रता को भी प्रदान करने वाली हैं जिसे हर व्यक्ति कर सकता है यहाँ तक रोगी व्यक्ति भी उनका अभ्यास करके धीरे–धीरे पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। रोगों की निवृत्ति के लिये ये रामबाण हैं। कालान्तर में रोगी भी योग ध्यान में प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भारतभूमि में शक्तिपात द्वारा योग विद्या को आगे बढ़ाने वाली संस्थायें बहुत ही कम हैं। पूर्ण योगीराज सिद्ध ही शक्तिपात का सामर्थ्य रखता है।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज कल्पान्त जीवी अजर अमर सिद्ध हैं। योग पृथ्वी से लुप्त प्रायः होता देखकर बीसवीं शताब्दी में योग विद्या के अनेक रूपों से योग का प्रचार किया है। वे योग के साक्षात् स्वरूप हैं। उनके श्वास–श्वास में योग की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। ''**कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्**'' की शक्ति वाले हैं। अर्थात् अपनी इच्छा से ही किसी वस्तु का निर्माण कर लें, क्षण में किसी को सिद्ध बना दें तथा उनके विपरीत चलने पर नीचे गिरा दें यह सब सामर्थ्य उनमें विद्यमान हैं। सिद्धों की इच्छा के अनुरूप ही प्रकृति चलती है। पातञ्जल दर्शन में योग विभूतियों पर भाष्य लिखते हुए भगवान् व्यास देव जी लिखते हैं कि योग सिद्ध योगियों की इच्छा के अनुसार प्रकृति उसी प्रकार से चलती है जिस प्रकार से सद्यः प्रसूत गौ अपने बछड़े के पीछे–पीछे चला करती है। श्री महाप्रभु जी ने कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा में रहकर उस भूमि को पवित्र किया और उसे योग का हृदय बनाकर गये। इसकी रज योग विभूतियों से ओत–प्रोत है। सिद्ध पुरुष ही ऐसे योगियों के विषय में जान पाते हैं साधारण मनुष्य नहीं। उनके शिष्यों की लम्बी शृंखला में देवरहा बाबा प्रभृति अनेक सिद्ध हैं जो हिमालय की कन्दराओं में अजर अमर हैं। श्री योगी हरीहरानन्द जी महाराज को श्री प्रभु जी ने एक क्षण में तत्त्व विजयी सिद्ध बना दिया जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर

समाधिस्थ हैं, ऐसा हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी हमें अपने श्री मुख से बतलाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा से ही अनुप्राणित होकर सैंकड़ों योग शाखायें देश–विदेश में चल रही हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज जी ने अपने शिष्यों के मन में श्री प्रभु जी के अप्रतिम योग प्रभाव को स्थापित किया है इसी कारण से उनके शिष्य प्रभुजी को सदाशिव स्वरूप मान कर उनकी पूजा व ध्यान करते हैं तथा सफल मनोरथ होते हैं।

आपका अवतरण पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी के घर में सन् 1888 में श्री राम नवमी के पावन पर्व में हुआ। श्री माता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। आप के जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का प्रमाण मिल गया था। आप के पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में प्रभुजी का अवतरण हुआ था। शैशवावस्था में ही आपके कार्य बड़े अलौकिक थे। चौदह वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे। विद्याध्ययन के समय ही आपके कई चमत्कार विद्यार्थियों ने देखे।

एक दिन दोपहर विश्राम के समय आप विश्राम कर रहे थे तभी एक नाग इनके सिर पर छाया किये खड़ा था। कुछ देर बाद स्वत: ही गायब हो गया। वहाँ से आप काशी जी चले गये। उस समय में बहुत से तांत्रिक मान्त्रिकों से आप की टक्कर हुई। आपने सभी की शक्तियों को परास्त किया और कुरीतियों तथा व्यभिचार के केन्द्रों को नष्ट किया। सभी आप की यौगिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्षों बाद आप श्री धाम वृन्दावन की ओर चले आये तथा घूमते–घूमते बरहन गाँव के लोगों पर कृपा बरसाते हुए संवाई गाँव पहुँच गये। यहाँ प्यारे लाल आदि आप के परम भक्त बन गये। आप के मुख से निकली वाणी अक्षरश: सत्य होती थी। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हो गये। आप के निर्विघ्न समाधि की स्थिति के लिए उचित जगह के लिए ग्राम वासियों ने गुफा बना दी। वहाँ कुछ वर्ष श्री प्रभुजी रहे तत्पश्चात् एक दिन चुपके से प्रात:काल ही गुफा के बन्द द्वार से अणिमा सिद्धि से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। वहाँ नेपाल में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु सदाशिव के निकट कई वर्ष रहने के बाद उनकी आज्ञा से ही योग विद्या के प्रसार के लिए पुन: मैदानों में आ गये। आपने संस्कारी भक्तों को योग मार्ग का उपदेश दिया। अपने भक्तों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन तत्त्व की साधना के उपयोगी क्रियाओं का

अन्वेषण करके भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। अमर तत्त्व, फल तत्त्व आदि विशेष साधनों का प्रचार किया। इन क्रियाओं द्वारा जठराग्नि दीप्ति के साथ–साथ कुण्डलिनी जागरण के लिए शक्ति संचार की प्राचीन यौगिक आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाया। आपने कई सिद्धयोगी बनाये जिसमें ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, श्री योगी मुल्खराज जी महाराज, गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री योगी नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी एवं ऋषिदेवी जी प्रमुख हुये। इन महान योगियों ने अध्यात्म योग व ध्यान योग का उपदेश अपने शिष्यों को दिया। सबसे अधिक प्रचार करने वालों में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन श्री महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। आप सच्चे अर्थों में श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ योगी हुए जिनके लाखों शिष्य ध्यानयोग में दीक्षित होकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। सदेह न होने पर आज भी अपने साधकों का अज्ञान तिमिर दूर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी की परम्परा के साधक भ्रमित नहीं रहते हैं। योग के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले होते हैं। योग में तर्क व विवाद का कोई स्थान नहीं है। ध्यान जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेक ख्याति ही जन्म मरण के चक्र को छुड़ा देने वाली होती हैं। 'सिद्धयोग' की परम्परा में यद्यपि सिद्धगुरुदेव सब कुछ स्वयं करने वाले होते हैं तथापि निमित्त मात्र से क्रिया योग की साधना का निरन्तर अभ्यास करते रहने की आज्ञा हमारे सद्गुरुदेव योगिराज जी की आज्ञा रही है। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान हैं सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साधक को चाहिए शुद्ध व निर्मल भाव से साधनारत रहे। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान रहते हैं। श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम में इस वर्ष श्री राम नवमी पर्व योग महामेला के रूप में 19, 20 व 21 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर उनके चरण–कमलों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

सच्चा बुद्धिमान् तो वह है, जो इस रहस्य को समझ लेता है और सारे जगत् की उत्पत्ति का कारण तथा जगत् की सारी प्रवृत्तियों का हेतु एकमात्र श्री भगवान् को मानकर, भावपूर्ण हृदय से भगवान् को भजता है।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

—डॉ. विजय सिंह

बहत्तरवें अध्याय में, भगवान श्रीकृष्ण, भीमजी और अर्जुन का ब्राह्मण वेष में जरासन्ध के पास जाकर उसे वचन बद्ध कर भीम से द्वन्द्व युद्ध कराया। भीमसेन और जरासन्ध दोनों गदा युद्ध में समान बल–कौशल वाले थे। यह द्वन्द्व युद्ध सताइस दिन तक बराबरी का रहा। भीमसेन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा—श्रीकृष्ण! मैं युद्ध में जरासन्ध को जीत नहीं सकता। भगवान जरासन्ध के जन्म और मृत्यु का रहस्य जानते थे। उन्होंने भीमसेन के शरीर में अपनी शक्ति का संचार किया और वध का उनको उपाय बताया।

शत्रोर्जन्ममृती विद्वान् जीवतं च जराकृतम्।
पार्थमाप्याययन् स्वेन तेजसाचिन्तयद्धरिः।। 42 ।। *अ. 72 स्क. 10*

अट्ठाइसवें दिन के युद्ध में उन्होंने एक वृक्ष की डाली को बीचोंबीच चीर कर भीमसेन को दिखाया। अभिप्राय समझकर भीमसेन ने जरासन्ध के पैर पकड़कर उसे धरती पर गिराकर, उसके एक पैर को धरती में दबाकर दूसरे पैर को पकड़ कर आधे–आधे चीर डाला। अब भगवान श्रीकृष्ण, जरासन्ध के पुत्र सहदेव को सिंहासनारूढ़ कर कैदी राजाओं को मुक्त किया।

राजाओं ने कहा—हे सर्वेश्वर! आप शरणागतों के सारे दुःख और भय को हरने वाले हैं। अब कृपा करके वह उपाय बतायें जिससे आपके चरणकमलों की विस्मृति कभी न हो।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—नरपतियों! तुम लोगों ने जैसी इच्छा प्रकट की है, उसके अनुसार आज से मुझ में तुम लोगों की निश्चय ही सुदृढ़ भक्ति होगी। यह जान लो मैं ही सबका आत्मा और स्वामी हूँ। भगवान ने उन्हें आध्यात्मिक उपदेश देकर स्वर्ण जड़ित रथों द्वारा उनको उनके राज्यों में भेजने की व्यवस्था सहदेव को आदेश देकर करवाया।

हस्तिनापुर लौटकर सभी ने राजा युधिष्ठिर की वन्दना की और जरासन्ध के वध सम्बन्धी कृत को कह सुनाया। धर्मराज इस परम अनुग्रह की बात सुनकर प्रेम विह्वल हो गये। उनके नेत्रों से आनन्द के आँसू निकल पड़े।

चौहत्तरवें अध्याय में शिशुपाल उद्धार की कथा भगवान शुकदेव जी ने परीक्षित को सुनाया है।

भगवान श्रीकृष्ण के अनुमोदन से धर्मराज ने राजसुयज्ञ की भली भाँति दीक्षा लेकर निपुण वेदवादी आचार्यों का वरण किया। राजसूयज्ञ दर्शनार्थ आमंत्रित नृप बाण, ऋषिगण,

द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, दुर्योधनादि सभी पधारे। अब प्रश्न उठा कि यज्ञ के प्रारम्भ में अग्र-पूजा किसकी होनी चाहिये। सहदेव ने कहा—अग्रपूजा के पात्र एकमात्र भगवान श्रीकृष्ण हैं, क्योंकि यह सारा विश्व कृष्ण रूप है। भगवान की महिमा विस्तार से कह कर सहदेव चुप हो गये। उस समय यज्ञ सभा में उपस्थित सभी ने एक स्वर से "बहुत ठीक, बहुत ठीक" कहकर सहदेव की बात का समर्थन किया। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने आनन्द से सराबोर होकर भगवान श्रीकृष्ण की पूजा की। उस समय आकाश से स्वयं ही पुष्पों की वर्षा होने लगी।

इधर आसन पर बैठा शिशुपाल जल भुन गया और क्रोधावेशित हो सभा में खड़े होकर भगवान श्रीकृष्ण को दुर्वचन कहने लगा। भगवान श्रीकृष्ण चुप रहे। सभासदों को यह सह्य नहीं हुआ वे निन्दक शिशुपाल को गालियाँ देते हुये सभा को त्याग कर बाहर चले गये। इधर क्रोधित शिशुपाल अपने मित्र राजाओं के साथ भगवान पर धावा बोलना चाहा तभी श्रीकृष्ण ने चक्र से शिशुपाल का सिर काट डाला। यह देखते ही उसके अनुयायी राजा भाग खड़े हुये। जैसे आकाश से गिरता लूक धरती में विलीन हो जाता है, वैसे ही सब प्राणियों के देखते-देखते शिशुपाल के शरीर से एक ज्योति निकल कर भगवान श्रीकृष्ण में समा गयी। शिशुपाल के अन्तःकरण में तीन जन्मों से वैरभाव बढ़ता जा रहा था। इस वैर भाव के वजह से ही ध्यान करते-करते वह तन्मय हो गया। सच है-मृत्यु के बाद भाव से ही गति होती है।

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत्।
पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता।। 45।।
जन्मत्रयानुगुणित वैरसंरब्धया धिया।
ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम।। 46।। *अ. 74 स्कं. 10*

यज्ञ के सफलतापूर्वक पूर्ण होने पर चतुर्दिक यज्ञ की प्रशंसा करते हुये लोग जाने लगे। सभी सुखी हुए, परन्तु दुर्योधन से पाण्डवों का यह उत्कर्ष सहन न हुआ। उसका मन ईर्ष्या से जलने लगा। एक दिन महाराज युधिष्ठिर अपने भाईयों, सम्बन्धियों एवं परम हितैषी भगवान श्रीकृष्ण के साथ मयदानव की बनाई सभा में स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हुये थे। उसी समय अभिमानी दुर्योधन अपने दुःशासन आदि भाइयों के साथ वहाँ आया। उस सभा में मय दानव ने ऐसी माया फैला रखी थी कि दुर्योधन मोहित हो स्थल को जल समझकर अपने वस्त्र समेट लिये और जल को स्थल समझकर वह उसमें गिर पड़ा। उसको गिरते देखकर भीमसेन, अन्य नरपति एवं राजरानियाँ हँसने लगीं। इससे दुर्योधन लज्जित हो गया। अब वह चुपचाप सभाभवन से निकलकर हस्तिनापुर चला गया। सच पूछो तो भगवान की दृष्टि से ही दुर्योधन को यह स्थल-जल का भ्रम हुआ क्योंकि इसी को निमित्त बनाकर पृथ्वी का भार हल्का करना था।

छिहत्तरवें अध्याय में शाल्व के साथ यादवों के साथ हुये युद्ध का वर्णन विस्तार से किया गया है। शाल्व शिशुपाल का मित्र था। रुक्मिणी विवाह के समय यह शाल्व भी पराजित हुआ

था। उस दिन सब राजाओं के सामने उसने प्रतिज्ञा किया कि मैं पृथ्वी से यदुवंशियों को मिटा कर छोड़ूँगा। प्रतिज्ञा पूर्ति हेतु उसने देवाधिदेव महादेव की घोर आराधना प्रारम्भ किया। वह दिन में एक बार मुट्ठीभर राख फाँक लिया करता था। औढ़रदानी भगवान शिव उसके इस तप से एक वर्ष में प्रसन्न होकर वर देने प्रकट हुये। उस समय शाल्व ने यह वर माँगा कि 'मुझे एक ऐसा विमान दीजिये जो देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग और राक्षसों से तोड़ा न जा सके, जहाँ इच्छा हो वहीं चला जाये और यदुवंशियों के लिये अत्यन्त भयंकर हो।" भगवान शंकर ने मय दानव को आदेश देकर लोहे का सौभ नामक विमान बनाकर दे दिया। यह विमान एक नगर इतना बड़ा, अन्धकारमय था, इसे पकड़ना वा देखना सम्भव नहीं था।

शाल्व ने एक विशाल सेना लेकर द्वारिका को घेर लिया और स्वयं विमान पर छिपकर कभी प्रकट होकर वाणों की वर्षा से द्वारिका वासियों को पीड़ित करने लगा। दुर्भाग्य उस समय श्रीकृष्ण जी, बलराम जी, सात्यकी, कृतवर्मा आदि हस्तिनापुर गये हुये थे। प्रजा के कष्ट को देखकर परम यशस्वी प्रद्युम्न जी ने सबको कहा–डरो मत! उन्होंने शाल्व के सैनिकों को अपने दिव्यास्त्रों से तथा शाल्व की माया को काट डाला।

मयदानव का बनाया हुआ शाल्व का वह विमान अत्यन्त मायामय था। वह कभी पृथ्वी पर आ जाता तो कभी आकाश में उड़ने लगता। कभी पहाड़ की चोटी पर दीखता तो कभी जल में तैरने लगता। यदुवंशियों के शस्त्रों से शाल्व के सैनिक अधिकाधिक मारे जा चुके थे। तभी हस्तिनापुर से भगवान श्रीकृष्ण, बलराम जी सहित द्वारिका पहुँच गये। बलराम जी नगर रक्षा करने लगे और भगवान श्रीकृष्ण अब शाल्व के पास रथ ले जाकर उसे ललकारा। भगवान श्रीकृष्ण को देखते ही उसने उनके सारथी पर बहुत बड़ी शक्ति चलायी। परन्तु भगवान ने अपने बाणों से उसके हजारों टुकड़े कर डाले। पुनः भगवान ने बाणों की झड़ी लगाकर उसके विमान को छलनी कर दिया।

शाल्व माया युद्ध करता उनके सामने श्री वासुदेव जी को बाँधकर ले आया जैसे कसाई पशु को बाँधकर ले जाये। उसने श्रीकृष्ण को ललकार कर कहा तुम्हारे पिता का देख मैं वध करता हूँ ऐसा कह कर तलवार के एक वार से माया रचित वासुदेव जी का सिर काट दिया।

भगवान श्रीकृष्ण ने सचेत होकर देखा तो सारा माया खेल खुल गया। भगवान श्रीकृष्ण ने एक ही गदा के वार से विमान को चूर–चूर कर दिया। विमान समुद्र में गिर गया। शाल्व भी हाथ में गदा लेकर बड़े वेग से श्रीकृष्ण की ओर झपटा। अन्ततः भगवान श्रीकृष्ण ने चक्र से शाल्व का सिर धड़ से अलग कर दिया। बड़े–बड़े ऋषि–मुनि भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों के आश्रय से आत्म–विद्या को प्राप्त करते हैं।

शाल्व के मारे जाने पर दंतवक्र और विदूरथ जो शिशुपाल के मित्रों में से थे वे भी बदला लेने हेतु अत्यन्त क्रोधित होकर रण भूमि में आ पहुँचे।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

सोई जानई जेहि देहु जनाई.....(5)

—जगदीश राए बंसल ''अधम''

(गतांक से आगे)

अखण्ड मण्डलाकार योग योगेश्वर अनन्त गुरूदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के लाड़ले शिष्य योगीराज श्री दुर्गा सिंह तोमर जी अपनी ''कर्म पथ'' पुस्तक के माध्यम से आगे लिखते हैं कि—

गहनाकर्मणोगति—

मनुष्य के द्वारा किए गए कर्म ही नए संस्कार को जन्म देते है और इन संस्कारों के वेग से ही वह जन्म–मरण के फंदे में पड़ा रहता है। अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक दादा गुरू देव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के समय की घटना है कि हिमाचल तिब्बत सीमा पर एक सिद्धाश्रम है जहाँ श्री प्रभु जी समाधिस्थ रहते थे। वहीं पर देवाधिदेव महादेव भी ऋषि रूप में समाधिस्थ रहते थे। उनकी समाधि छः माह में टूटती थी। एक बार समाधि से उठने के तीसरे दिन उन्होंने श्री प्रभु जी से कहा कि शीघ्र ही हमें निमन्त्रण में जाना है। श्री प्रभु जी ने इस बात को परिहास में समझा। महादेव जी श्री प्रभुजी के मनोभाव को जान कर बोले, कि मनमहेश पर्वत पर लगभग दो सौ वर्षों से एक महात्मा जी तपस्यारत हैं। उनकी इच्छा अब शरीर त्यागने की है। उन्होंने हमें दर्शनार्थ याद किया है। अब दोनों महाराज जी आकाश मार्ग से गन्तव्य की ओर चले। सिद्धाश्रम के सभी महात्मा आकाशगमन में दक्ष होते हैं। वहाँ पहुँच कर श्री महादेव जी ने उस महात्मा जी से शरीर छोड़ने का कारण जानना चाहा तो महात्मा जी बोले कि अब यह शरीर जीर्ण हो चला है, इसलिए त्यागना चाहता हूँ। श्री महादेव जी ने पूछा कि क्या तुमने समस्त प्रारब्ध कर्मों को क्षय कर लिया है? महात्मा जी ने कहा कि मैं तो यही समझता हूँ। तदुपरान्त भगवान शिव ने आज्ञा दी कि आप समाधि में पिछले संचय कर्मों को देखें। महात्मा जी ने 107वें जन्म में एक संस्कार पड़े देखा। यों हुआ कि उस जन्म में महात्मा के हाथ से अंगारों से भरा एक तस्ला बिल्ली के बच्चों पर गिर पड़ा। बिल्ली के तीन बच्चे मर गए। महात्मा जी को बहुत पश्चाताप हुआ और समाधि से उठ कर श्री महादेव जी के चरणों में गिर पड़े। महादेव जी पुनः बोले कि अब आप 111वें जन्म को देखिए। महात्मा जी पुनः समाधि में चले गए। क्या देखते हैं कि 111वें जन्म में उनके द्वारा एक विशाल यज्ञ सम्पन्न हुआ है, जिसका फल भोगना शेष है। अतः श्री महादेव जी ने आदेश दिया कि अभी

शरीर त्यागना उचित नहीं है, पुनर्जन्म हो जाएगा। तत्पश्चात् भगवान शिव ने, उस महात्मा के सिर पर अपना बरदहस्त रख कर उसके जीर्ण शरीर को युवावस्था में कर दिया और आशीर्वाद दे कर लौट आए।

तात्पर्य यह है कि संस्कार शेष रहने पर इतने वृद्ध महात्मा को भी जन्म लेना पड़े तो साधारण साधक का क्या कहना? अतः अपने संस्कार पर विशेष ध्यान रखिए।

कर्मफल सम्बन्धी एक और घटना इस प्रकार है कि मेरे ग्रामीण क्षेत्र में एक सम्पन्न परिवार के सज्जन शिकार खेलने के बड़े शौकीन थे। उसके पास सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध थीं। एक दो साथियों के साथ शिवपुरी–दतिया–भिण्ड–मुरैना के जंगलों में, हिरण–खरगोश–नीलगाय तथा पक्षियों आदि का शिकार किया करते थे। मांस–मदिरा उनका व्यसन था। साठ वर्ष की आयु में उन्हें दिल का दौरा पड़ा, जब होश आता तो चिल्ला पड़ते थे कि ''बचाओ! ये हिरण सींग मार रहे हैं। ये पक्षी मुझे खाने को आते हैं।'' लगभग बीस दिन की तड़फन पश्चात् उसका देहान्त हुआ। प्रकृति के नियमानुसार मरणोपरांत शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध–मन–बुद्धि अहंकार से निर्मित सूक्ष्म शरीर कर्मों के अनुसार अगला जन्म पाता है। कहावत है जैसी करनी वैसी भरनी।

संस्कार साक्षात्कार–

बात सन् 1966 की है। उन दिनों मेरी साधना अच्छी चल रही थी। मैं भोपाल के अपने एक्साईज विभाग के कार्यालय में बैठे–बैठे समाधिस्थ हो जाया करता था। एक दिन सायं कालिन आरती पश्चात् ध्यान में एक भयानक वृद्ध स्त्री बिखरे बाल, बड़े–बड़े दाँत....मेरी तरफ तेजी से आती दिखाई दी। अकारण दयालु गुरूदेव भगवान ने आवाज लगाई बीमारी–बीमारी, और बीमारी का मूल रूप भी मुझे टैलिविजन की तरह दिखा दिया। उसी रात्रि आठ बजे मुझे ज्वर हो गया। यह प्रथम अवसर था जब आराध्य देव भगवान ने मुझे संस्कार साक्षात्कार की योग्यता प्रदान की। पश्चात् मुझे होने वाली सभी घटनाएं पूर्व में ही दिखाई देने लगीं। कोई भी कष्ट मनुष्य के पिछले किए गए पापों के कारण ही होता है।

तपस्या का फल–

एक दिन मैं संकट मोचन गुरूदेव भगवान के श्री चरणों में बैठा था तो लगभग पचास वर्षीय एक सज्जन ने आकर गुरूदेव भगवान से प्रार्थना की कि ''महाराज जी, मुझे कुष्ठ रोग हो गया है। बहुत उपचार कराने पर भी ज्यों का त्यों है। मुझ पर कृपा कीजिए।'' गुरूजी कुछ समय ध्यान मग्न पश्चात् उसको आज्ञा दी कि लल्ला तुम गंगा किनारे चले जाओ। वहाँ तुलसी दल और गाय का दूध पी कर ''ॐ नमः शिवाय'' मन्त्र का जाप करो। एक वर्ष

पश्चात् हमसे मिल लेना। यह बात उस सज्जन के मन में समा गई। वह ऋषिकेश जा कर तप करने लगा। धीरे–धीरे पाँच–छः महीने में यह मन्त्र उसकी बुद्धि में प्रवेश कर गया। आ गई लहर शिवा के मन में, एक वर्ष पश्चात् वह गुरुजी के पास लौटा। तो कुष्ठ रोग का नामो निशान भी नहीं था। दया सागर गुरु देव भगवान ने उसको विधिवत् दीक्षा दी और वह बहुत अच्छा योगी बन गया। तात्पर्य है कि सच्ची लगन से व तीव्रतम तपस्या से कठिन से कठिन प्रारब्ध समूल नष्ट हो जाते हैं।

आश्रम की ईंट ईंट बेच दूँगा–

सन् 1978 के फरवरी माह की बात है। ऋषिकेश में साधना के समय हुई आकाशवाणी के अनुसार मैं अपना मृत्यु संस्कार काट रहा था। ग्वालियर के डॉक्टरों के अनुसार मेरे बचने की कोई आशा नहीं थी। मेरी पत्नी ने हरियाणा में व्यस्त गुरुदेव को मेरे अस्वस्थ होने की सूचना भिजवाई। सूचना पाते ही अगाध करुणा सागर गुरुदेव भगवान अपना योग प्रचार बीच में ही छोड़कर दो ब्रह्मचारियों सहित मेरे आवास पर आ गए। करीब पाँच मिनट ध्यान मग्न पश्चात् बोले, बेटा–तुम्हें कष्ट अधिक है, इसे मैं अपने ऊपर लेकर हल्का कर दूँगा।

कुछ समय पश्चात् गुरुदेव जी ने हमारे पूजा घर में व्यवस्था करवा कर अपने ऊपर दो रजाईयाँ डलवा लीं। उन्हें तीव्र ज्वर हो आया। उस कक्ष में केवल राम आश्रेय ही रह सकता था। सायं साढ़े छः बजे कक्ष का गेट खुला। नियन्ता जी का ज्वर उतर चुका था। मुझ से बोले, लल्ला मैंने तुम्हारा प्रारब्ध हल्का कर दिया है, लेकिन अभी भी तुम इसे भोगने में असमर्थ हो। कल फिर तुम्हारे प्रारब्ध को अपने ऊपर लूँगा। कृपा सिन्धु गुरुदेव भगवान का किस मखमली स्वर से गुणगान करूँ? अगले दिन पुनः तीव्र ज्वर पीड़ा भोगने के पश्चात् मेरे पास आकर बोले, लल्ला–अब जो संस्कार शेष है, उसे तू आसानी से सहन कर सकता है। उस दिन मैं इतना स्वस्थ हो गया कि कृपा निधान–पतित पावन गुरुदेव भगवान को दिल्ली जाने हेतु स्टेशन पर पहुँचा सका। गुरुदेव भगवान मुझे बहुत–बहुत चाहते थे। मेरे बीमारी के समय आश्रम में कह दिया करते थे कि दुर्गा सिंह को स्वस्थ करने के लिए मुझे आश्रम की ईंट बेचना पड़े तो उसे भी बेच दूँगा। बीती घटनाओं को याद करके मैं रोमांचित हो जाता हूँ।

योगी का बल–

साधक की श्रद्धा, माता की तरह पोषण करती है। यदि गुरुकृपा से साधक तत्व विजयी बन जाता है तो वह अपने संकल्प से वृद्ध शरीर को युवा शरीर में बदल सकता है। वह बैठे–बैठे करोड़ों मील तक देख सकता है। करोड़ों मील की सुन सकता है, स्पर्श कर सकता है। जहाँ तक पृथ्वी है गंध ग्रहण कर सकता है। मगर योग और भोग दोनों एक साथ नहीं

चल सकते। मैं स्वयं साक्षी हूँ कि सन् 1971–72 में जब मैं इन्दौर था, मुझ पर गुरूदेव भगवान की महती कृपा थी तब मैंने अपने कलिष्ट संस्कारों को हंसते–हंसते काट लिया था। मैं ध्यान स्थिति में उत्तम चल रहा था। एक दिन एक मित्र श्री करन सिंह रावत डी. एस. पी. मेरे पास आए। उनके सुपुत्र की एक भयंकर दुर्घटना में हड्डियाँ टूट गईं थी। मैं उसे देखने अस्पताल चला गया। सर्वशक्तिमान श्री गुरूदेव भगवान की दी गई शक्तियों के करण, मेरे द्वारा कमरे में प्रवेश करते ही उसकी नकारात्मक शक्तियां एक के बाद एक भागने लगीं। मैं ध्यान दृष्टि से देख रहा था कि एक घण्टे में ही पचास से अधिक आसुरी शक्तियाँ पलायन कर चुकी थीं। इस प्रकार बेटे को अल्पकाल में ही स्वास्थ लाभ मिल गया।

साधक की सिद्धियाँ गुरूदेव भगवान के संकल्प के आधार पर निर्भर करती हैं। गुरू सत्ता में ही सभी देवी देवताओं का समावेश होता है। जैसे माता बच्चे को चलना सिखाती है और जब वह गिरने को होता है तो माता दौड़ कर संभाल लेती है। संसार में कोई ऐसा प्राणी नहीं जिसे अपने किए का फल न भुगतना पड़े।

ध्यान में हनुमान जी गले मिले–

मैंने वीर बजरंग बली हनुमान जी की साधना कभी नहीं की लेकिन मेरे साधन काल में श्री हनुमान जी महाराज ने कई बार दर्शन देकर कृतार्थ किया है। एक बार तो वे ऐसे मिले जैसे छोटे भाई से मिले हों। मैंने अन्तर्यामी गुरूदेव जी से इसका कारण पूछा तो बोले कि हनुमान जी महान योगी हैं, वे हर योगी साधक की अवश्य मदद करते हैं। जो योग सूर्य भगवान ने श्री हनुमान जी को सिखाया था, वही कुण्डलिनी महायोग तुम्हें सिखाया गया है।

श्री हनुमान जी महाराज के इस प्रकार मिलन एवं प्रेम–विश्वास से मैंने अपने कलिष्ट संस्कारों की काली गठरी श्री हनुमान जी पर रख दी। गठरी रखते ही हनुमान जी का रंग काला होने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मूर्छित होकर गिरने वाले हैं। हनुमान जी महाराज ने वह गठरी मुझे लौटा दी और कहने लगे कि अपने कर्मों का फल तुम्हें स्वयं ही भोगना पड़ेगा। हम आपकी यथा समय सहायता करते रहेंगे। अब मैंने सूर्य देव से सहायता की याचना की।

जय गुरु देव !

(क्रमशः)

हम और हमारा स्वास्थ्य

—श्री मूलशंकर वानप्रस्थी

स्वास्थ्य के तीन उपस्तम्भ—

अथ त्रयः उपस्तम्भा आहार, निद्रा ब्रह्मचर्यमिति।

स्वास्थ्य रूपी भवन के तीन स्तम्भ (खम्भे) हैं—आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य। यह भवन इन्हीं तीन खम्भों पर ठहरा हुआ है, स्थिर है। यदि यह आधार स्तम्भ तीनों सुदृढ़ हैं तो यह स्वास्थ्य रूपी भवन चिर काल तक स्थिर रहेगा अन्यथा जब आधार स्तम्भ ही जर्जर हैं, लचर-पचर है, तो कोई भरोसा नहीं कब गिर कर ध्वस्त हो जाये। इसलिये इस विषय में भी कुछ जानना अत्यावश्यक है।

आहार—

'आह्रियतेति आहारः' अर्थात् जिसे हम बाहर से अन्दर ले जाते हैं वह आहार है। यथा भोजन, जल और वायु। भोजन के विषय में कहा है—

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणा मनुत्पत्ति करं च यत्।। चरक. सू. *5/13*

हमें ऐसा आहार नित्य करना चाहिए जिससे स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता रहे जो रोग शरीर में अभी उत्पन्न नहीं हुये हैं पर हो सकते हैं उनकी उत्पत्ति न हो सके। और भी—

प्राणाः प्राण भृतामन्नं, तदयुक्ता हिनस्त्यसून्।
विषं प्राण हरं तच्च, युक्ति युक्तं रसायनम्।। चर. चि. *24/60*

प्राणधारियों का अन्न ही प्राण होता है पर अविधिपूर्वक लेने से वह प्राणघातक हो जाता है। जैसे विष प्राणघातक होता है पर विधिपूर्वक उचित मात्रा में युक्ति से लिया जाये तो जीवन रक्षक रसायन बन जाता है। अतः युक्ति, मात्रा और विधि रहित आहार भी कष्टप्रद व जीवन विघातक हो जाता है। तथा युक्ति, मात्रा और विधिवत लेने से जीवन रक्षा रसायन का काम करता है। समस्त दृश्य प्रपंच पाँच भौतिक है, शरीर पाँच भौतिक है, तथा भोजन सामिग्री भी पाँच भौतिक है। अतः भोजन चतुर्विधि कहा गया है।

'पंचाम्यन्नं चतुर्विधम्' *(गीता 15/14)*

अन्न चार प्रकार के होते हैं—

(1) भक्ष्य—जो चबाकर खाया जाता है जैसे-रोटी आदि।

(2) भोज्य—जो निगला जाता है जैसे—दूध आदि।

(3) लेह्य—जो चाटा जाता है जैसे—चटनी आदि।

(4) चौस्य—जो चूसा जाता है जैसे—गन्ना (ऊख) आदि। फिर तत्त्वों की प्रधानता से भी चार प्रकार के होते हैं। यथा—

1. **पृथ्वी तत्त्व प्रधान**—अन्न—दाल का भोजन (हीन कोटि का भोजन) गेहूँ, जौ ज्वार, बाजरा, चावल आदि प्रथम श्रेणी में तथा द्विदल धान्य मूँग, उर्द, मोठ, मसूर, अरहर आदि दालें द्वितीय श्रेणी में आते हैं।

2. **जल तत्त्व प्रधान भोजन**—कन्द, मूल आदि भोजन (उत्तम भोजन हैं) इनमें लौकी, टिण्डा आदि प्रथम श्रेणी में, तथा गूदेदार फल द्वितीय श्रेणी में हैं।

3. **अग्नि तत्त्व प्रधान भोजन**—फलाहार (अत्युत्तम भोजन) इसमें प्रथम श्रेणी में रसीले फल जैसे मौसमी, नींबू, सन्तरा, अंगूर आदि तथा द्वितीय श्रेणी में आम, केला, अमरूद, सेव, चीकू आदि गूदेदार फल आते हैं।

4. **वायु तत्त्व प्रधान भोजन**—(सर्वोत्तम भोजन है) प्रथम श्रेणी में विल्व पत्र, तुलसीपत्र आदि द्वितीय श्रेणी में पालक, चौलाई आदि आते हैं। अरण्य वासी सन्त तपस्वियों का प्रायः यही परम सात्विक कन्द, मूल, फल आहार रहा है।

इन चारों तत्त्वों को सूक्ष्म रूप से इस प्रकार भी पाया जा सकता है—पृथ्वी तत्व भूमि पर नंगे पैर घूमने से, जल तत्त्व—मुख द्वारा निर्मल जल पीने से, अग्नि तत्त्व—धूप सेवन से, वायु तत्त्व—धूप, धूल, दुर्गन्ध रहित खुले मैदान में गहरी सांस लेने से पाया जाता है। आकाश तत्त्व—निराहार विधिवत उपवास से पाया जाता है। कहा है—

स्वर्ण शोध से अधिक सार्थक होते हैं। उपवास—रोग नष्ट तो होते ही हैं, होता—आत्म विकास। तन—मन को निर्मल निरोग करने हेतु आयुर्वेद का सिद्धांत है—लंघनं परमौषधम्।

ज्वर, कूकर और पाहुना, इनकी आदत खास।
लंघन तीन कराइ दो, फिर ना आवें पास।।

पेट को आराम देने, विजातीय द्रव्यों को देह से बाहर निकालने, विषय विकारों की निवृत्यर्थ, नैतिक—आध्यात्मिक प्रगति, आत्म—विश्वास की प्राप्ति, प्रेम—विशालता की दिव्य अनुभूति, विराट के साथ आत्म—सामंजस्य और रोग निवारण हेतु महत्त्वपूर्ण साधन हैं। उपवास—उप समीपेयो वासः जीवात्मा परमात्मयोः उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्। उपवास का वास्तविक अर्थ हठपूर्वक कायक्लेश नहीं, तन, मन, बुद्धि को विशुद्ध विनिर्मल, निरोग करके चिर शान्ति थिर विश्राम तथा प्रभु सान्निध्यता का परम लाभ पाना है।

जब युक्त सोना, जागना, आहार और विहार हो।
हो दु:खहारी योग तब परिमित सभी व्यवहार हो।।

आधुनिक ढंग से आहार द्रव्यों पर विचार–

1. **विटामिन (खाद्योज) ए स्रोत**–यह हरी पत्ती वाले शाक–सब्जियाँ पातगोभी, पपीता, गाजर, पके टमाटर, दूध, मक्खन, मलाई, आलू, सन्तरा, मटर, आम, केला, छुआरा, खजूर, सोयाबीन, धनियाँ आदि में पाया जाता है।

गुण एवं उपयोग–नेत्र–ज्योति में कमी अन्धापन न होने देना, त्वचा को स्वस्थ रखना, शारीरिक विकास करना, दाँत व अस्थियों को हितकारी, बालकों की बढ़ती उम्र में उपयोगी है। इसके अभाव में दृष्टिमांद्य प्रकाश का सहन न होना, दुर्बलता, शारीरिक विकास न होना, त्वचा शुष्क खुरदरी होना तथा श्वास रोग प्रकट होना है।

2. **विटामिन–बी स्रोत**–छिलके वाली मूँग की दाल, हरे शाक, दूध, मूँगफली, चना, सोयाबीन, मूली, पके टमाटर, घी, गेहूँ, चावल, शकरकन्द, केला, गोभी, मटर, मीठे फल आदि में पाया जाता है। इसके कुछ प्रकार हैं–जिन्हें विटामिन बी–1, विटामिन बी–2, विटामिन बी–6 और विटामिन बी–12 कहा जाता है। सबको मिलाकर विटामिन बी कम्प्लैक्स कहा जाता है।

गुण एवं उपयोग–यह मांस पेशियों को सुदृढ़ बनाता है। शरीर को पुष्ट रखता है, सुन्दर सुडौल बनाता है, पाचन क्रिया ठीक रखता है। शरीर में चिकनापन और सौम्यता रखता है। समुचित शारीरिक विकास करना इस खाद्योज का प्रमुख काम है, इसके अभाव से अपच, क्षुधा न लगना, कब्ज रहना, बेरी–बेरी नामक रोग होना, रक्ताल्पता, दुर्बलता, मुख में छाले, पेट में जलन, त्वचा शुष्क, बिवाई फटना, होंठों के किनारे कटना, भोजन में अरुचि होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

3. **विटामिन–सी स्रोत**–नींबू, सन्तरा, आंवला, पातगोभी, चूना, टमाटर, अंकुरित धान्य, हरा धनियाँ, हरीमिर्च, कच्ची शाक का सलाद, अमरूद, मौसमी, सहजन की फली आदि में पाया जाता है।

गुण एवं उपयोग–रक्त शुद्ध रखना, दांत एवं मसूड़ों को स्वस्थ व सुदृढ़ रखना, त्वचा को निरोग और स्वच्छ रखना, रक्तस्त्राव को रोकना, घाव को शीघ्र भरना, पेट को साफ रखना, परिपाक क्रिया ठीक रखना इसका काम है। इसके अभाव से रक्तविकार, त्वचा के रोग, मसूढ़े व दन्त रोग (पायरिया) मुख दुर्गन्ध, स्कर्वी रोग (अस्थि दौर्बल्य) सूखा–पीलिया होना, पाचन क्रिया भली भाँति न होना, आमाशय व आंतों में घाव होना, घावों का शीघ्र न

भरना, आदि लक्षण प्रकट होते है।

4. विटामिन–डी स्रोत–सूर्य की किरणों, पातगोभी, गाजर, पालक, दूध, घी, मक्खन और काडलिवर ऑयल में यह पाया जाता है।

गुण और उपयोग–अस्थियों का उचित विकास कर सुदृढ़ रखना, शरीर का समुचित विकास करना, कद बढ़ाना, दाँतों को स्वस्थ सुन्दर और सुदृढ़ रखना, अस्थि क्षय को रोकना, हृदय व मांसपेशियों के संकोचन और रक्तसंचार का संतुलन बनाये रखना इस विटामिन का काम है। इसके अभाव से बच्चों के शेष रोग (रिकेट्स) रोग होना, शरीर दुर्बल, अस्थिमार्दव होना, शरीर की अस्थियों व दाँतों का उचित विकास न होने के कारण कुरूप होना, बाल झड़ना व श्वेत हो जाना, शरीर का रंग पीला हो जाना, रोग प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास होना, आदि लक्षण होते हैं।

5. विटामिन–ई स्रोत–अंकुरित अन्न, हरी शाक–सब्जी, वनस्पति से बने तेल, दूध, अनाज, पातगोभी, प्याज, लहसुन, सेव, केला, शहद, गाजर और शुक्रवर्धक पदार्थ मूँगफली आदि में पाया जाता है।

गुण एवं उपयोग–शरीर में पौरुष बल, शुक्रबल, प्रजनन शक्ति उत्पन्न करना चेहरे पर ओज, हृदय को बल देना, गर्भ धारण की क्षमता उत्पन्न करना, ओज और कान्ति बनाये रखना, गर्भरक्षा व विकास इसका काम है। इसके अभाव से नामर्दी, बांझपन, शुक्राणुओं की कमी व अभाव होना, गर्भ न ठहरना गिरजाना, जननेन्द्रिय छोटा होना, हृदय दौर्बल्य योनि रोग होना, आदि विकार होते हैं।

बिना औषधि के रोग निवारण तथा बिना परिस्थिति परिवर्तन के चिन्तामुक्ति और बिना अध्ययन के मोह नाश करने हेतु तीन साधन हैं–

(1) भोजन का शनैः शनैः त्याग। (2) इन्द्रिय संयम। (3) चित्तवृत्ति निरोध यथायोग्य यथाशक्ति अभ्यास–(1) संयम (2) सेवा (3) प्रभु स्मरण।

इन्हीं साधनत्रय को कुरान–बाइबिल में (1) रोजा (2) जकात (3) नमाज कहा गया है।

गीता और रामायण में–(1) तप (2) दान (3) यज्ञ के नाम से कहा है।

इसी को योगीराज हृदयनारायण जी ने उपवास, अभोग और सुमिरन नाम दिया है।

यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। *–गीता 18/5*

यज्ञ, दान और तप यह मनीषियों को भी पवित्र करने वाले हैं।

भोजन की विधि–भोजन भगवत् प्रदत्त अनुपम प्रसाद है, अतः भोजन का चतुर्थ भाग अन्य जीवों को समर्पण करके प्राणाग्नि होत्र विधि से ही करना चाहिये। प्रथम ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा, इस मन्त्र द्वारा जल से एक आचमन करें पुनः ॐ प्राणाय स्वाहा,

ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा। इन पांच मन्त्रों से पांच प्राणों को आहुति पांच ग्रासों की देनी चाहिये। वेद भगवान का कहना है–

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्व प्रतिष्ठितम्।। *अथ. 11, 4–1/6*

प्राणस्वरूप परमात्म देव को नमस्कार है, अखिल ब्रह्माण्ड जिनके वश में है। वह सर्वेश्वर हैं, सब कुछ उन्हीं में प्रतिष्ठित है। 'प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता' बृह. 3/1 1/6। प्राण ही यज्ञ का उद्गाता (मन्त्र गायन करने वाला है) इस प्रकार प्राणाग्नि होत्र एक आर्ष ऋषि–मुनि प्रदत्त सहज सात्विक वैदिक साधना प्रणाली है।

हरिर्दाता हरिर्भोक्ता, हरिरन्नं प्रजापतिः।
हरिर्विप्र शरीरस्तु भुक्ते भोजयते हरिः।।
अन्न ब्रह्मा रसो विष्णु भोक्ता देवो महेश्वरः।
इति संचिन्त्य भुजानो अन्न रोषो नवाधते।।
अन्नं वै ब्रह्म, अन्नं न निंद्यात् इति वृतम्।

अन्न निसन्देह महान है, अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिये। यह वृत है। इस प्रकार भोजन के विषय में वैदिक वाङ्मय में बहुत कुछ लिखा है। पवित्र होकर शुद्ध स्थान में शान्तिपूर्वक अन्न भगवान को नमस्कार करके भोजन करना चाहिये। "जल–अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।' ऋक्. 10/9/9

जल में सुख शान्ति प्रदायक सोम है ऐसा कहा जाता है, जल सर्वरोग नाशक औषध तत्त्व है। 'आपः प्रणीत भेषजम् वरूथ तस्वे मम।' ऋग. 10/9/7।

हे जल तुम हमारे शरीर में रोगनाशक औषधरूप होकर रहो।
अनुदिनं त्वनुदिते रवि मण्डले, पिवति तोयमनुज्झित मूत्रविट्।
अनिल पित्त कफानल दोष हृत्, शतसमा रमते तरुणी शतम्।।

(योग रत्नाकर)

सूर्योदय से पूर्व बिना मल–मूल का त्याग किये जो प्रतिदिन ताम्रपात्र में रात भर भरा हुआ स्वच्छ अमृतोपम जल का पान करता है वह स्वस्थ होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। पीने का जल निर्गन्ध, निर्मल, रंगहीन होना चाहिये। भोजन के शादि अन्त में अधिक जल पीना अहितकर है। मध्य में थोड़ा–थोड़ा पीना चाहिए। डेढ़–दो घण्टे बाद जितना चाहें पियें। 'भेषज वारि जीर्ण वारि बल प्रदम्। भोजने चामृत वारि भोजनान्ते विष प्रदम्।।' अजीर्ण (भोजन का परिपाक न हुआ हो तब) जल औषधि है और परिपाक हो जाने पर जलपान करना बल प्रदान करता है, भोजन करते समय बीच में थोड़ा–थोड़ा पीना अमृतोपम है पर

वही जल भोजनान्त में विषवत् काम करता है। अतः विधिवत जल पीना ही स्वास्थ्यप्रद है।

वायु--प्राणी भोजन के बिना कई दिन जीवित रह सकता और साधन परायण ऋषि मुनि तो वर्षों रहे हैं, रह सकते हैं। जल के बिना भी कुछ दिन गुजारे जा सकते हैं पर वायु के बिना तो सामान्य व्यक्ति का जीवित रहना ही असम्भव है। जब शरीर और समस्त इन्द्रियगण अपने--अपने काम को छोड़कर विश्राम करने लगते हैं तब प्रसुप्त अवस्था में भी प्राण सजग प्रहरी की भाँति अपने कर्त्तव्य का पालन भलीभाँति करते रहते हैं। जन्म से मृत्यु पर्यन्त प्राण क्षण भर को भी कभी विश्राम नहीं लेते इनका काम अनवरत चलता ही रहता है और जब ये विश्राम लेने लगते हैं, बस तभी श्मशान की अन्तिम यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। और फिर 'भष्मान्त छ शरीरम्' यजु. 40/15। शरीर का अन्त भस्म के रूप में हो जाता है, इसलिये वेद भगवान का आदेश है, सन्देश है और यही उपदेश है। (ओम् लिक्वे स्मर क्लिे स्मर कृत 6 स्मर) हे कर्म करने वाले मानव तू ॐ नाम वाले सच्चिदानन्दघन परमात्मा का स्मरण कर, संसार में प्रभु ने तुझे इन्द्रिय शक्ति, विचार शक्ति और भाव शक्ति प्रदान करके भव वारिधि से पार होने के लिए भेजा था, तूने क्या किया? यदि समय है तो इस महानतम कर्त्तव्य का स्मरण कर जीवन को सफल बनाना ही श्रेयस्कर है।

(क्रमशः)

भय बुद्धि की हार है

भय हमारी बुद्धि की हार है, हमारे आत्मविश्वास की हार है। मनुष्य सृष्टि का श्रृंगार है, किन्तु मनुष्य तो सृष्टि की निकृष्टतम वस्तु है। भय एक मिथ्या, काल्पनिक भ्रम है। आत्मविश्वास में अनन्त शक्ति है। वह आपको ऊँचे शिखर पर ले जा सकती है। आत्मविश्वास को जगाना शुरू करें और कुछ ही समय में आप में परिवर्तन आ जाएगा। आत्म--विश्वास आस्तिकता का प्रथम चरण है, आत्मविश्वास का अभाव नास्तिकता का प्रारम्भ हैं, " हाँ, हाँ मैं क्या नहीं कर सकता ? मैं अवश्य कर सकता हूँ और सफल हो सकता हूँ। मैंने बड़े--बड़े काम किये हैं, आगे भी कर दूँगा। प्रभु ने मेरा हाथ पकड़ रखा है, प्रभु कृपा मेरे साथ है। " भय की सीमा नहीं होती है, कहाँ तक भय मानें।

योग दर्शन का शिक्षा दर्शन

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा, एम. ए.

शिक्षा व्यक्ति की सन्निहित शक्तियों के विकास की एक प्रक्रिया है। शिक्षा के बिना व्यक्ति बद्ध पशु–तुल्य है। शिक्षा व्यक्ति को आनन्द, इच्छा, स्वातन्त्र्य तथा जीवन को विकसित करने की दिशा भी है। पाश्चात्य शिक्षाविद् डॉ. जोन. जी. हिबन के अनुसार जीवन की चुनौतियों का सामना करने की योग्यता शिक्षा द्वारा विकसित होती है। शिक्षा की अनिवार्यता को स्वीकार कर संसार में शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए लम्बे–चौड़े कार्यक्रम चलते रहते हैं। जन–संचार के माध्यमों, विद्यालयों, पुस्तकालयों, पाठ्य–पुस्तकों तथा विभिन्न समुदायों के व्यक्तियों विचारकों तथा प्रचारकों द्वारा खेल–तमाशे, से लेकर रीति–रिवाजों, त्यौहारों और पर्वों के द्वारा नई पीढ़ी को शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक शासन–तन्त्र शिक्षा के माध्यम से ही अपने तन्त्र का शिकंजा लोगों पर कसना चाहता है। लेकिन वास्तविक शिक्षा के स्वरूप से प्राय: बहुत कम लोग परिचित हैं। शिक्षा के नाम पर व्यक्ति को–पेट–पालन करने वाला चालाक प्राणी बनाया जाता है या संहारक शैतान का पुतला तैयार किया जाता है। इस तथाकथित शिक्षा से व्यक्ति की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ती है। शिव–सूत्र में ज्ञान को बन्धन का कारण माना गया है–''ज्ञानं बन्धः'' ज्ञान व्यक्ति को अहंकार से बाँधता है, लोभ से बाँधता है। व्यक्ति में व्यर्थ की चिन्तायें और इच्छायें पैदा कर ज्ञान व्यक्ति को इच्छाओं की पूर्ति के साधन के साथ बाँधता चला जाता है, जिससे व्यक्ति कोल्हू का बैल बना संसार–चक्र में घूमता चला जाता है। ज्ञान–व्यक्ति को ज्ञान के विषय तथा उसके फल से बाँधता है। ज्ञान त्रैत पैदा करता है। जहाँ ज्ञान आता है वहाँ ज्ञान का जानने वाला ज्ञाता उपस्थित रहता है तथा ज्ञान का विषय ज्ञेय भी उसी के साथ चिपक जाता है। ज्ञान अज्ञान से द्वेष करने के कारण द्वेष से भी बँधता ही है।

प्राय: शिक्षा शास्त्री कहा करते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना है। भला वह ज्ञान किस काम का, जो व्यक्ति को बंधन में डाले? इस खतरे को पहचान कर प्रसिद्ध शिक्षा–शास्त्री हरबर्ट स्पेंसर ने कहा था कि शिक्षा का महान् उद्देश्य ज्ञान नहीं अपितु क्रिया है। क्रिया के बिना ज्ञान भारस्वरूप है। क्रिया आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार की होती है। बाह्य–क्रिया व्यक्ति का सामाजिक संक्रमण तथा आन्तरिक क्रिया उत्क्रमण एवं अन्तःकरण का अतिक्रमण है। इस प्रकार क्रिया शिक्षा का प्रधान अंग है। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया–ये तीन

पक्ष व्यक्ति के मानस पक्ष हैं। शिक्षा का उद्देश्य इन तीन पक्षों का सन्तुलित एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करना है। क्या स्कूली शिक्षा से व्यक्ति का सन्तुलित विकास सम्भव है? यह एक महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न है। शताब्दियों से विश्व में इस पर विचार–विमर्श होता आ रहा है तथा शिक्षा के नाम पर अरबों–खरबों रुपया खर्च हो रहा है। परिणाम सबके सामने आ रहा है। शिक्षा के द्वारा रचे गये व्यक्ति ने समाज तथा बाह्य पर्यावरण को इतना प्रदूषित कर दिया है कि जीवन ही खतरे में पड़ता जाता है। व्यक्ति स्वयं में भी चिन्ता, तनाव, भय, ईर्ष्या, युयुत्सा तथा चंचलता एवं अनिश्चय का तानाबाना बुन कर जीवित लाश बनता जा रहा है। उसने संसार को बारूद के ढेर पर खड़ा कर दिया है। बन्दर के स्वभाव का यह शिक्षित मनुष्य न जाने कब दियासलाई की तीली से इस बारूद में विस्फोट कर दे? आज मनुष्य की शिक्षा जानकारी तथा कौशल तक ही सीमित हो गई है। उससे व्यक्ति की शक्तियों का विकास तो हो रहा है, किन्तु केवल पाशविक शक्तियों का ही, क्योंकि शिक्षा पशुओं पर प्रयोग कर मनुष्यों के काम में लाई जाती है।

शिक्षा का एक तीसरा दृष्टिकोण भी है। शिक्षा का उद्देश्य न ज्ञान है और न क्रिया है, बल्कि सम्यक्–दर्शन है। सम्यक्–दृष्टि से तात्पर्य मनुष्य को अपने मनुष्यत्व का ज्ञान तथा सृष्टि के प्रयोजन का दर्शन ही शिक्षा का उद्देश्य है। यह उद्देश्य अधिक सूक्ष्म तथा व्यापक होने के कारण बहुत कम व्यक्तियों की बुद्धि में आ पाता है। दर्शन–शास्त्रों में इस उद्देश्य को शिवत्व, एकत्व, अद्वैत की प्राप्ति के बिना क्रिया तथा परिश्रम किये नहीं मिलता। यह उद्देश्य गुरु के हृदय से शिष्य के हृदय को सीधे मिलता है। सैकड़ों पुस्तकें पढ़ने से यह उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। इसके अभाव में व्यक्ति का कोई जीवन–दर्शन नहीं बन पाता। गरुण पुराण में ज्ञान दो प्रकार का माना गया है–1. आगमोक्त, 2. विवेकज।

आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधाज्ञानं प्रचक्षते।

पढ़ने–पढ़ाने से जो ज्ञान होता है, वह आगमोक्त ज्ञान कहलाता है और समाधिप्रज्ञा से उद्‌भूत ज्ञान विवेकज ज्ञान कहलाता है। एक विश्लेषणात्मक ज्ञान है और दूसरा संश्लेषणात्मक ज्ञान है। योगी शंकराचार्य ने शब्द–शास्त्र के ज्ञान को चित्त चांचल्य का कारण माना है। शब्दों के हेर फेर से अपने प्रकार के तर्क–वितर्क से तत्व–बोध कभी नहीं हो पाता। शंकराचार्य विवेक चूड़ामणि में कहते हैं–"शब्दशास्त्रं महारण्यं चित्तविभ्रम कारणम्।" जितनी भी भाषा और लिपि पर आधारित ज्ञान है, वह कैंची का काम करता है। भाषा ध्वनियों का समूह है तथा लिपि बिन्दुओं का समूह है। एकत्व का दर्शन भाषा के द्वारा नहीं होता। योगी आत्म–ज्ञान का विज्ञान ध्वनियों के मूल को नाद बिन्दु, कला अर्द्धेन्दु आदि के संयम द्वारा जानकर

ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा बन जाता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।

कालक्रम से योग में स्थित योगी सृष्टि के सभी रहस्यों का ज्ञान अपनी चित्तशक्ति में प्राप्त कर लेता है। चित्तशक्ति स्वतन्त्र विश्व–सिद्धि की कारणभूत शक्ति है। 'चित्तिः स्वतन्त्रता विश्व–सिद्धि हेतुः–प्रतिभिज्ञाहृदयम्।''

उपनिषदों में दो प्रकार की विद्याओं का उल्लेख मिलता है–एक विद्या और दूसरी अविद्या। इसी को परा और अपरा भी कहा जाता है। जिससे सर्व–व्यापक सत्ता के साथ जुड़कर योगी सर्वज्ञ बनता है तथा सर्वत्र एक ही आत्मा के दर्शन करके राग–द्वेष से रहित कूटस्थ सर्व शक्तिमान बन जाता है, वह विद्या है और जो खण्ड–ज्ञान है वह अविद्या है। बस अविद्या से व्यक्ति अभिमानी, कामी, लोभी और सृष्टि का नाश करने वाला बनता है। शिव सूत्र में कहा गया है कि–

शुद्धविद्योदयात् चक्रे शत्वसिद्धिः।

–शिवसू. 1/21

जब योगी में शुद्ध विद्या का उदय हो जाता है तो वह अपने सभी चक्रों का भेदन कर संसार के जन्म–मरण के चक्र से परे ईश्वर कोटि का सिद्ध बन जाता है। यह मस्तिष्क के विकास से कभी नहीं हो पाता। वृहदारण्य उपनिषद् के पंचमोऽध्याय में संकेत है कि सभी विद्याओं का उद्गम स्थान हृदय है। हृदय से 101 नाड़ियाँ विभिन्न शक्तियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करती हैं। उसमें हिता नाम की नाड़ी से कुण्डलिनी शक्ति उत्क्रमण कर प्राणों का ऊर्ध्व आकर्षण करती है। उसी के उत्क्रमण से साधक के जीवन में श्रद्धा, तप, ब्रह्मचर्य तथा सत्कर्म का विश्वास सागर की तरह हिलोरे लेने लगता है।

इस हृदय–मन्दिर में श्री सद्गुरुदेव श्रद्धा की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। साधक का हृदय श्रद्धामय, तपोमय तथा विज्ञानमय बनता है। गुरु की कृपा से शक्तिपात द्वारा शक्ति जागरण प्रारम्भ होता है, तभी अज्ञान सही अर्थ में क्षय होता है और उसके हृदय में सबके प्रति प्रेम का झरना फूट पड़ता है। दुर्भावना की ज्वाला शान्त हो जाती है। फिर वह किसी को छोटा या बड़ा समझकर तिरस्कार या स्तुति के चक्कर से बचकर अलग निर्द्वन्द्व आनन्द में मग्न रहता है। सारे शास्त्र सभी विद्यायें उसके सामने हाथ जोड़ कर उपस्थित हो जाती हैं। उसके लिए ज्ञेय पदार्थ स्वल्प हो जाता है, क्योंकि वह अनन्त हो जाता है, उसके संशय नष्ट हो जाते हैं। भ्रम और अविवेक के बादल छिन्न–भिन्न हो जाते हैं। ऐसे ज्ञानी के लिए ही गीता में कहा है कि जैसे परिपूर्ण समुद्र को पा जाने पर गड्ढे के पानी के प्रति ममत्व–बुद्धि नहीं होती, उसी प्रकार योगज प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाने पर ब्रह्मवेत्ता योगी के लिए वेद–शास्त्र

महत्वहीन हो जाते हैं। श्री सद्गुरू की कृपा से शक्तिपात द्वारा हृदय-ग्रन्थि खुलकर सच्चा ज्ञान होता है–

सद्गुरो सम्प्रसादेन,
प्रतिबन्ध क्षयस्तत:।
दुर्भावना तिरस्काराद्वि,
ज्ञानं मुक्तिदं क्षणात्।।
शक्तिपातेन संयुक्ता विद्या,
वेदान्त वाक्यजा।
यदा यस्य तदा तस्य,
विमुक्तिर्नात्र संशय।।

शक्तिपात के क्रम से ही यह ब्रह्म-विद्या, हृदय की तंगदिली को दूर करने की विद्या प्राप्त होती है, जिसे पाकर व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसको कुछ भी ज्ञातव्य अवशिष्ट नहीं रहता। वह आत्म-तृप्त, आत्मवान्, आत्मक्रीड़, गुणातीत तथा गीता की भाषा में स्थितप्रज्ञ बन जाता है। उसका जीवन-दर्शन न काम पर आधारित फ्राइड का जीवन-दर्शन होता है, न अर्थ पर आधारित मार्क्स का जीवन-दर्शन होता है, बल्कि उसका जीवन-दर्शन वास्तविक मानवता पर आधारित होता है। जिसकी दृष्टि में समस्त चराचर जगत् एक कुटुम्ब है। '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' का भाव उसी के हृदय में पल्लवित होता है। अन्यथा केवल मस्तिष्क और बुद्धि के विकास की शिक्षा से व्यक्ति वैज्ञानिक-इन्जीनियर, प्रशासक और साहित्यकार आदि आदि सब कुछ हो सकता है, पर उसमें कुण्ठायें, ग्रन्थियाँ बनी रह सकती हैं। वे चाहे राष्ट्रवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद या धर्मोन्माद के रूप में वैचारिक स्तर पर हों या व्यक्तिगत स्तर पर राग-द्वेष के रूप में गुणवृत्ति विरोध के रूप में हो। ऐसा व्यक्ति संसार में सुख-शान्ति का साम्राज्य कभी नहीं ला सका और न ला सकता है। रामकृष्ण परमहंस विद्वान् पुरुष के लिए कहा करते थे कि विद्वान व्यक्ति बहुत दूर की सोचता है और कल्पना-लोक में बहुत ऊँची उड़ान भरता है, किन्तु उसके व्यवहार में दृष्टि इतनी व्यापक नहीं हो पाती, वह गिद्ध की तरह होता है। 'गीधहिं दृष्टि अपार' होती है, किन्तु ऊँचा उड़कर भी दूर-दूर तक दृष्टि डालकर उसकी दृष्टि सड़े मुर्दे की तलाश ही करती है।

इसी प्रकार तथा-कथित शिक्षित व्यक्ति ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्त और दर्शन की बात करके अपनी वासना तथा कामना की पूर्ति के सिवाय आत्म-कल्याण की सोचता भी नहीं। बल्कि उसके मन में मिथ्या अहंकार जन्म ले लेता है कि मैं सर्वज्ञ हो गया हूँ। वह पण्डितमानी बनकर दूसरे को उनकी श्रद्धा और विश्वास से अलग कर देता है।

नचिकेता शिक्षा का जिज्ञासु था। उसने ब्रह्म–विद्या के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहा। क्योंकि जैसे स्वर्ण के ज्ञान से स्वर्ण से बने सभी आभूषणों का ज्ञान स्वतः हो जाता है। उसी प्रकार सृष्टि के मूल तत्व को जानने से सृष्टि का ज्ञान स्वतः हो जाता है। रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि यदि तुम्हारी मित्रता स्वामी से हो जाय, तो उनके कितने बाग–बगीचे, कितना धन ऐश्वर्य है और उनकी गुप्त क्या–क्या बातें हैं–इन सबका तुम्हें स्वतः ज्ञान हो जायेगा। उसी प्रकार माँ की शरणागति प्राप्त हो जाने के बाद वह संसार रूपी सभी खिलौनों का स्वतः ज्ञान करा देगी। शरणागत भाव तथा शिष्यत्व भाव के विकास से हृदय विद्या (दहद विद्या) की प्राप्ति होती है। यह विद्या गुरूदेव के हृदय से शिष्य के हृदय को गुप्त रूप से प्राप्त होती है। शिष्यत्व के जग जाने पर गुरु में गुरूत्व जाग उठता है और हृदय की वीणा झंकृत हो उठती है। 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्' श्रद्धा हृदय की वस्तु है। श्रद्धा के जन्म से ज्ञान का सूर्य प्रकाशित होता है। ज्ञान के सूर्य से हृदय–कमल खिलता है। बिना श्रद्धा के सूर्योदय नहीं होता और न हृदय–कमल विकसित होता है।

यदि हृदय–कमल न खिल पाया तो व्यक्ति निर्ग्रन्थ भी नहीं हो पाता। उसके हृदय में प्रेम की वृष्टि नहीं होती। मन की ज्वाला शान्त नहीं होती। दुःख द्वन्द्वों से वह छूट नहीं पाता। धन, वैभव तथा बाह्य सफलताओं की खुशी से यदि जीवन में प्रेम का संचार हो भी जाय तो उससे ज्ञान दीपक नहीं जलता। बिना ज्ञान दीपक के जले जड़चेतन की ग्रन्थि खोलने में जीव सफल नहीं हो पाता। कितनी ही वर्षा हो जाय, यदि वहाँ बीज नहीं है तो उत्पत्ति नहीं होगी। अक्षर ज्ञान ही बीज है। वह अक्षर गुरूदेव की परावाणी से शिष्य के हृदय की भूमि पर बीज मन्त्र के रूप में बोया जाता है। शिष्य उसे तप और श्रद्धा की वृष्टि से विवेक और वैराग्य का खाद डालकर पल्लवित और पुष्पित करता है।

ईश्वर और धर्म

धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति हो सकती है। क्या तुम इसके लिए तैयार हो? क्या तुम यह चाहते हो? यदि हाँ, तो तुम उसे अवश्य प्राप्त कर सकते हो, और तभी तुम यथार्थ धार्मिक होगे। जब तक तुम इसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर लेते, तुममें और नास्तिकों में कोई अन्तर नहीं। नास्तिक ईमानदार हैं, पर वह मनुष्य जो कहता है कि वह धर्म में विश्वास रखता है, पर कभी उसे प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न नहीं करता, ईमानदार नहीं है।

आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग

स्वामी विवेकानन्द

यदि यह सच है, तो मन के लिए प्राणपण से प्रयत्न करने के लिए यह काफी प्रलोभन है। लेकिन कोई बड़ा यश सम्पादन करना जिस तरह प्रत्येक विज्ञान में कठिन है, उसी तरह इस क्षेत्र में भी। इतना ही नहीं, बल्कि यहाँ तो और भी अधिक कठिन है। फिर भी अनेक लोग समझते हैं कि ये शक्तियाँ सुगमता से प्राप्त की जा सकती हैं। सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए तुम्हें कितने वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं? जरा इसका विचार करो। बिजली या यन्त्र सम्बन्धी ज्ञान के अध्ययन में ही तुम्हें कितने वर्ष बिताने पड़ते हैं? और फिर सारे जीवन काम करते रहना पड़ता है।

पुनश्च, इतर विज्ञानों का विषय है स्थिर वस्तुएँ—ऐसी वस्तुएँ जो हल–चल नहीं करतीं। तुम कुर्सी का विश्लेषण कर सकते हो, कुर्सी दूर नहीं भाग जाती। परन्तु यह मनोविज्ञान मन को अपना विषय बनाता है—वह मन, जो सदा चंचल है। ज्यों ही तुम उसका अध्ययन करना चाहते हो, वह भाग जाता है। अभी मन में एक वृत्ति विद्यमान है, फिर दूसरी उदित हो जाती है, बस इस तरह मन सर्वदा बदलता ही जाता है। उसकी इस चंचलता में ही उसका अध्ययन करना पड़ता है, उसे समझना पड़ता है, उसका आकलन करना पड़ता है, उसको अपने वश में लाना पड़ता है। अतएव देखो, यह शास्त्र कितना अधिक कठिन है। यहाँ कठिन अभ्यास की आवश्यकता है। लोग मुझसे पूछते हैं कि आप प्रत्यक्ष प्रयोग कर क्यों नहीं सिखलाते? अजी! यह कोई मजाक नहीं है। मैं इस मंच पर खड़े–खड़े व्याख्यान देता हूँ और तुम सुनकर घर चले जाते हो; तुम्हें कोई लाभ नहीं होता, और न मुझे ही। तब तुम कहते हो, "यह सब पाखण्ड है।" ऐसा इसलिए होता है कि तुम्हीं इसे पाखण्ड बनाना चाहते थे। इस शास्त्र का मुझे बहुत थोड़ा ज्ञान है, परन्तु जो कुछ थोड़ा–बहुत मैं जानता हूँ, उसके लिए तीस साल तक मैंने अभ्यास किया है, और छः साल हुए लोगों को वह सिखला रहा हूँ। मुझे तीस साल लगे इसके अभ्यास के लिए। तीस साल की कड़ी कोशिश! कभी–कभी चौबीस घण्टे में मैं बीस घण्टे साधना करता रहा हूँ। कभी रात में एक ही घण्टा सोया हूँ। कभी रात–रात भर मैंने प्रयोग किये हैं; कभी–कभी मैं ऐसे स्थानों में रहा हूँ, जहाँ किसी प्रकार का कोई शब्द न था, साँस तक की आवाज न थी। कभी मुझे गुफाओं में रहना पड़ा है। इस बात का तुम विचार करो। और फिर भी मुझे बहुत थोड़ा मालूम है, या कहिये बिलकुल ही नहीं। मैं कठिनता से इस शास्त्र की मानो किनार भर छू पाया हूँ। परन्तु मैं समझ सकता हूँ कि यह सच है, अपार है और आश्चर्यजनक है।

अब, यदि तुममें से कोई इस शास्त्र का सचमुच अध्ययन करना चाहता है, तो उसी प्रकार के निश्चय से आरम्भ करना होगा जिस निश्चय से वह किसी व्यवसाय का आरम्भ करता है। यही नहीं, बल्कि संसार के किसी भी व्यवसाय की अपेक्षा उसे इसमें अधिक दृढ़ निश्चय लगाना होगा।

व्यवसाय के लिए कितने मनोयोग की आवश्यकता होती है और वह व्यवसाय हमसे कितने बड़े श्रम की माँग करता है! यदि बाप, माँ, स्त्री या बच्चा भी मर जाय, तो भी व्यवसाय रुकने का नहीं। चाहे हमारे हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हों फिर भी हमें व्यवसाय की जगह पर जाना ही होगा, चाहे व्यवसाय का हरएक घण्टा हमारे लिए यन्त्रणा क्यों न हो। यह है व्यवसाय, और हम फिर भी समझते हैं कि यह ठीक ही है, इसमें क्या अन्याय है?

यह शास्त्र किसी भी अन्य व्यवसाय से अधिक लगन माँगता है। व्यवसाय में तो अनेक व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन इस मार्ग में बहुत ही थोड़े; क्योंकि यहाँ पर मुख्यतः साधक के मानसिक गठन पर ही सब कुछ अवलम्बित रहता है। जिस प्रकार व्यवसायी, चाहे दौलत जोड़ सके, या न जोड़ सके, लेकिन कुछ कमाई तो जरूर कर लेता है, उसी प्रकार इस शास्त्र के प्रत्येक साधक को कुछ ऐसी झलक अवश्य मिलती है, जिससे उसका विश्वास हो जाता है कि ये बातें सच हैं और ऐसे मनुष्य हो गये हैं, जिन्होंने इन सब का पूर्ण अनुभव कर लिया था।

इस शास्त्र की यह केवल रूपरेखा है। यह शास्त्र स्वतः प्रमाण तथा स्वयंप्रकाश है, और किसी भी अन्य शास्त्र या विज्ञान को अपने से तुलना करने के लिए ललकारता है। दुनिया में पाखण्डी, जादूगर, धोखेबाज अनेक हो गये हैं, और विशेषतः इस क्षेत्र में। ऐसा क्यों? इसीलिए कि जो व्यवसाय जितना अधिक लाभप्रद होता है, उसमें उतने ही अधिक पाखण्डी और धोखेबाज होते हैं। परन्तु उस व्यवसाय के अच्छे न होने के लिए यह कोई कारण नहीं। एक बात और बतला देना चाहता हूँ। इस शास्त्र के अनेक वादों को सुनना बुद्धि के लिए चाहे बड़ी अच्छी कसरत हो, और आश्चर्यजनक बातें सुनने से चाहे तुम्हें बौद्धिक सन्तोष प्राप्त होता हो, परन्तु अगर इससे परे सचमुच तुम्हें कुछ सीखने की इच्छा हो, तो सिर्फ भाषणों को सुनने से काम न चलेगा। यह व्याख्यानों द्वारा नहीं सिखलाया जा सकता, क्योंकि यह शास्त्र है अनुभूतिनिष्ठ, और अनुभूति ही अनुभूति प्रदान कर सकती है। यदि तुममें से सचमुच कोई अध्ययन करना चाहता है, तो उसको सहायता देने में मुझे बहुत आनन्द होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता एवं कर्मयोग

श्री पूर्णचन्द्रपन्त शास्त्री

मनुष्य अपने जीवन में प्रतिक्षण कोई न कोई कर्म करता ही रहता है। वह न चाहते हुए भी विवश होकर कर्म करता है। वे कर्म ही कालान्तर में कर्माशय का रूप धारण कर लेते हैं और जीव को बन्धन में डाले रखते हैं। यदि मनुष्य कर्म रहस्य को समझकर योगनिष्ठ होकर जीवन में व्यवहार करे तो उसके द्वारा किये जाने वाले कर्म पुण्य–पाप के फलदाता नहीं हुआ करते। फलेच्छा न रखकर कर्त्तव्य बुद्धि से किया जाने वाला कर्म भोग में नहीं आता। योग–दर्शन में कहा गया है–

कर्म्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधः मितरेषाम्।

(योग–दर्शन 4/7)

अर्थात् योगियों के कर्म न पुण्य के होते हैं और न पाप के होते हैं, जबकि सांसारिक लोगों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं–पुण्य के, पाप के और पुण्य तथा पाप के मिले–जुले।

शास्त्रविहित कर्म पुण्य कर्म कहलाते हैं और जिन कर्मों का शास्त्रों में निषेध किया गया है वे पाप–कर्म कहलाते हैं। फल की इच्छा न रखते हुए शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्मों को भगवत् प्रीत्यर्थ करना कर्मयोग कहलाता है। जो व्यक्ति जीवन भर पुण्यमय कार्यों को करते रहते हैं, किन्तु न तो फल की इच्छा रखते है और न अपने को उन कर्मों का कर्त्ता समझते हैं वे कर्मयोगी कहलाते हैं। फलेच्छा को त्यागकर कर्म करते रहना योगारूढ़ होने का सर्वोत्तम साधन है। जैसे–

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं, कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव, शमः कारणमुच्यते।।

(गीता 6/3)

जो योग में आरूढ़ होना चाहता है ऐसे मननशील योग साधक के लिए निष्काम भाव से कर्त्तव्य कर्म करना ही कारण कहा गया है अर्थात् कर्म करने से ही मनुष्य योगारूढ़ हो सकता है और योगारूढ़ हो जाने पर सब प्रकार के संकल्पों का मिट जाना ही उसके कल्याण का हेतु है।

भाव यह है कि फल की प्राप्ति–अप्राप्ति में हमारी समता है या नहीं, इसका पता तभी चलेगा जब हम कर्म करेंगे। इसके अतिरिक्त हमारे अन्दर स्वभाव से ही जो कर्म करने का वेग रहता है उसे मिटाने के लिए कर्म करना अत्यन्त आवश्यक है। निष्काम भाव से कर्त्तव्य

कर्म को करते हुए सम्पूर्ण क्रियाओं का प्रभाव संसार की तरफ हो जाता है और साधक स्वयं योगारूढ़ हो जाता है।

योगारूढ़ता के क्या लक्षण हैं? यह बात अगले श्लोक में बताई गई है—

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु, न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्प संन्यासी, योगारूढस्तदोच्यते।।

(गीता 6/4)

जिस काल में मनुष्य न तो इन्द्रियों के रोगों में और न कर्मों में आसक्त होता है, इस काल में सर्व संकल्पों का त्यागी वह पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

जैसे—जैसे इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि विषयों में आसक्त होना ठीक नहीं है, वैसे ही कर्मों में भी हमारी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। फलेच्छा न होने पर भी हमारे मन में कर्म करने का जो वेग होता है उसे ही कर्म की आसक्ति कहते हैं। यह आसक्ति मिटती है ईश्वर प्रीत्यर्थ कर्म करने से तथा निःस्वार्थ भाव से प्राणी जगत की सेवा से। अतः साधक को चाहिए कि वह कर्म तो विधि पूर्वक और तत्परता से करे पर उसमें आसक्त न होकर सावधानीपूर्वक निर्लिप्त रहे।

अखिल जगन्नियन्ता योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपने पवित्र गीतोपदेश में दो निष्ठाओं का उल्लेख किया है—सांख्यनिष्ठा और योगनिष्ठा। इनमें 'सांख्य' शब्द का अभिप्राय ज्ञानयोग से है और 'कर्म' शब्द कर्मयोग का वाचक है। दोनों का लक्ष्य परमात्मा प्राप्ति ही है। इन दोनों निष्ठाओं में कर्मयोग का विशेष महत्त्व है।

संसार अंशी है और शरीर उसका अंश है। अतः इसे संसार की वस्तु समझते हुए संसार की सेवा में लगा देना कर्मयोग है। कर्मयोग में कर्म संसार के लिए और योग अपने लिए होता है। अपने लिए कुछ न करने से कर्त्तव्य स्वतः नष्ट हो जाता है, तथा कर्म अकर्म बन जाते हैं।

गीता के दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, बारहवें तथा अठारवें अध्याय में कर्मयोग का विस्तृत वर्णन किया गया है। तीसरे अध्याय में तो आद्योपान्त कर्मयोग का ही वर्णन है। इस अध्याय का नाम ही कर्मयोग रखा गया है।

मनुष्य कर्म करने के लिए विवश है और कर्म करना उसका अधिकार भी है। अतः उसे कर्त्तव्य बुद्धि से तथा समता का भाव रखते हुए भी अपने सभी कर्म करने चाहिए।

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा, ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

(गीता 2/47)

तेरा कर्म करने में अधिकार है फल–प्राप्ति में नहीं। इसलिए फल की इच्छा मत रख और कर्म करना भी मत छोड़।

इस श्लोक में चार बातें बताई गई हैं–

(1) ईश्वर ने मनुष्य को कर्म करने का अधिकार दे रखा है। अतः उसे ईश्वर की आज्ञा समझकर कर्त्तव्य–पालन के उद्देश्य से सदैव कर्मरत रहना चाहिए।

(2) कर्मों का फल प्राप्त करने में वह किसी प्रकार भी स्वतन्त्र नहीं है। अतः उसे फल की चिन्ता ईश्वर पर छोड़ देनी चाहिए।

(3) अपने द्वारा किये गये कर्मों में तनिक भी ममता एवं आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

(4) तू कर्म करना मत छोड़। क्योंकि जिस प्रकार निषिद्ध कर्मों को करने से मनुष्य पाप का भागी बनता है, उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन न करना भी मर्यादा का उल्लंघन है।

योगस्थः कुरु कर्माणि, सङ्ग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

(गीता 2/48)

हे धनंजय! तू आसक्ति को त्याग कर सफलता और असफलता में समान बुद्धि वाला होकर तथा योग में स्थित होकर कर्म करता जा। क्योंकि समत्व ही योग कहलाता है।

इस समतावस्था को प्राप्त करने के लिए कर्मयोगी अपने सभी कर्मों एवं उसके फल में किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रखता। जिस कारण वह राग–द्वेष, हर्ष–शोकादि विकारों से निर्लिप्त रहता है। सफलता मिलने पर उसे हर्ष नहीं होता और असफलता मिलने पर वह किसी प्रकार का शोक भी नहीं करता।

उपरोक्त श्लोक पर अपने भाष्य में श्री शंकराचार्य जी महाराज ने लिखा है–

हे अर्जुन! तू योग में स्थित होकर केवल ईश्वर के लिए कर्म कर। उसमें भी "ईश्वर मुझ पर प्रसन्न हो जाय" इस प्रकार की कामना को त्यागकर कर्म कर। फल तृष्णा से रहित होकर पुरुष द्वारा कर्म किये जाने पर अन्तःकरण की शुद्धि से उत्पन्न होने वाली ज्ञान–प्राप्ति तो सिद्धि है और ज्ञान–प्राप्ति का न होना असिद्धि है। इन दोनों सिद्धि और असिद्धि में समभाव रखते हुए कर्म करता जा, क्योंकि सिद्धि और असिद्धि में समता का भाव रखना ही योग है।

कर्मयोग में तीन बातें सदैव स्मरणीय होती हैं–

(1) मेरा निजी कुछ नहीं है।

(2) मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए।

(3) मुझे अपने (स्वयं के) लिए कुछ नहीं करना है।

गीता के तीसरे अध्याय में कर्मयोग का सविस्तार वर्णन किया गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि सांख्यनिष्ठा और योगनिष्ठा वस्तुतः एक ही है और दोनों का आधार कर्म है और तत्वज्ञान की प्राप्ति रूप फल भी एक ही है। अन्तर है तो केवल इतना कि सांख्य (ज्ञानयोग) में विवेकपूर्ण वैराग्य की प्रधानता रहती है और कर्मयोग में निःस्वार्थ कर्म की। अतः मनुष्य को सदैव कर्मरत रहना चाहिए। क्योंकि–

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव, सिद्धिं समाधिगच्छति।।

(गीता 3/4)

मनुष्य न तो कर्मों को आरम्भ किये बिना निष्कर्मता (योगनिष्ठ) को प्राप्त होता है और न कर्मों के त्याग मात्र से ज्ञानयोग की सिद्धि को प्राप्त होता है। भाव यह है कि कर्मयोग का आचरण करने वाला मनुष्य कर्मों को करता हुआ ही निष्कर्मता को प्राप्त होता है। इसी प्रकार ज्ञानयोगी कर्म में कर्त्तापन के अभिमान को त्यागकर तत्वज्ञान की प्राप्ति–रूप सिद्धि को प्राप्त होता है।

जिस स्थिति में साधक के कर्म अकर्म बन जाते हैं अर्थात् बन्धन–कारक नहीं होते, उस स्थिति को ही निष्कर्मता कहा गया है। जिस प्रकार भुने हुए या छिलके से रहित हुए बीज में पुनः अंकुरित होने की शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार कामना रहित होकर तथा ईश्वरार्पण बुद्धि से किये गये कर्म शुभाशुभ फल के दाता नहीं होते।

प्रकृति निरन्तर परिवर्तनशील है। शरीर एवं इन्द्रियाँ प्रकृति का ही अंश हैं। अतः प्रतिक्षण बदलते हुए पदार्थों के साथ अपना सम्बन्ध मानने के कारण मनुष्य किसी भी अवस्था में एक क्षण के लिये भी कर्म किये बिना रह नहीं सकता। प्रकृति के गुणों के वशीभूत होने से उसे विवश होकर कर्म करना पड़ता है। साधक इस विवशता से तभी मुक्त हो सकता है, जब उसे यह यथार्थ अनुभव हो जाये कि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं, प्रकृति की इन क्रियाओं से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। कर्मयोगी नित्य परिवर्तनशील सांसारिक पदार्थों की कामना का त्याग करके इस परवशता को मिटा देता है और कर्म करना नहीं छोड़ता, क्योंकि फलेच्छा एवं आसक्ति को त्याग कर कर्त्तव्य कर्मों को करते रहना और मन को ईश्वर–चिन्तन में लगाये रखना ही वास्तविक कर्मयोग है। इसके विपरीत हठपूर्वक त्यागी बनकर कर्मों को छोड़ देना मिथ्याचार (ढोंग) कहलाता है। इस सम्बन्ध में भगवान की ओर से यह स्पष्ट चेतावनी है–

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

(गीता 3/6)

जो मूढ़–बुद्धि मनुष्य अपनी आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों को और हस्त–पादादि

कर्मेन्द्रियों को हठपूर्वक रोक लेता है, किन्तु मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता रहता है वह व्यक्ति ढोंगी कहलाता है, किन्तु–

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।

(गीता 3/7)

जो साधक मन से इन्द्रियों को भलीभांति वश में करके लोक और परलोक के समस्त भोगों में आसक्ति रहित होकर तथा लाभ–हानि में समान बुद्धि रखकर अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा लोक–संग्रह के लिए कर्मयोग का आचरण करता है वही श्रेष्ठ है।

किस प्रकार के कर्म बन्धन कारक होते हैं इसे स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र, लोकेऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय, मुक्तसङ्गः समाचर।।

(गीता 3/9)

यज्ञार्थ किये जाने वाले कर्मों से विपरीत कर्मों में लगा हुआ जन–समुदाय ही कर्मों में बँधता है। इसलिए अनासक्त होकर यज्ञार्थ कर्म करो।

शास्त्रविहित वर्णाश्रमोचित कर्त्तव्य–पालन रूप कर्म तथा यज्ञ, दान, तप, होम, मन्त्र–जाप, वेदाध्ययन एवं ध्यानाभ्यास आदि सभी पारमार्थिक कृत्य और दूसरों को सुख पहुंचाने एवं उनका हित करने के उद्देश्य से किये जाने वाले सभी सात्विक कर्म यज्ञार्थ कर्म कहलाते हैं। वस्तुतः यज्ञार्थ कर्म का अभिप्रायः सात्विक कर्म से ही है। गीता के अठारहवें अध्याय में सात्विक कर्म की परिभाषा बताते हुए कहा गया है–

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते।।

(गीता 18/23)

अर्थात्–जो कर्म शास्त्रविधि से नियत किया हुआ है और कर्त्तव्य के अभिमान से रहित है तथा फल की इच्छा न रखने वाले पुरुष के द्वारा राग–द्वेष से रहित होकर किया गया है ऐसा कर्म सात्विक कर्म कहलाता है।

इसके अतिरिक्त जितने भी सकाम और निषिद्ध कर्म हैं वे यज्ञार्थ से अन्यत्र कर्म कहे जाते हैं। भोगेच्छा और ऐश्वर्यबुद्धि से अपने सुख और आराम के लिए किये जाने वाले सभी प्रकार के राजस और तामस कर्म इसी श्रेणी में आ जाते हैं। ये सभी कर्म मनुष्य को जन्म–मरण के चक्र में घुमाने वाले होते हैं, किन्तु यज्ञार्थ कर्मों में आसक्ति का अभाव होने के कारण वे स्वयं तो भोग में नहीं आते साथ ही साधक के पूर्वसंचित कर्माशय को भी भस्म करके उसे सर्वथा निष्पाप बना देते हैं।

योगसन्यस्त कर्माणं ज्ञानसंछिन्न संशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबधनन्ति धनंजय।।

(गीता 4/41)

कर्मयोग के द्वारा जिसका सम्पूर्ण कर्मों से विच्छेद हो गया है और ज्ञान के द्वारा जिसके सम्पूर्ण संशयों का नाश हो गया है, ऐसे स्वरूपपरायण योगी को कर्म नहीं बांधते।

संसार में यज्ञ, दान, तप आदि पवित्र करने वाले जितने भी साधन हैं उन सबका साध्य तत्व ज्ञान है। यह तत्वज्ञान ही योग–सिद्धि की पराकाष्ठा है। कर्मयोगी के अन्दर यह परम पवित्र तत्वज्ञान स्वतः ही प्रकट हो जाता।

न हि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः, कालेनात्मनि विन्दति।।

(गीता 4/48)

अर्थात् जिस तत्वज्ञान से सम्पूर्ण कर्म भस्म हो जाते हैं और जिसके समान पवित्र करने वाला संसार में दूसरा कोई साधन नहीं है। उसी तत्वज्ञान को कर्मयोगी दूसरे किसी साधन के बिना स्वयं अपने आप में ही प्राप्त कर लेता है।

12वें अध्याय के 12वें श्लोक में भक्तियोग के अन्तर्गत भगवत्प्राप्ति के लिए अभ्यास, ज्ञान एवं ध्यान ये तीन साधन बताये गये हैं और कर्मफल त्याग को इन तीनों से श्रेष्ठ बताया गया है–

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञाना त्थ्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफल त्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।

(गीता 12/12)

अभ्यास से शास्त्र–ज्ञान श्रेष्ठ है, शास्त्र–ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मफलों का त्यागना (ईश्वर को अर्पण करना) श्रेष्ठ है, क्योंकि कर्मफल त्याग से शीघ्र ही परम शान्ति की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ 'कर्मफल त्याग' शब्द कर्मयोग का ही वाचक है, क्योंकि कर्मयोग में कर्मफल त्याग की ही प्रधानता रहती है।

आत्म–कल्याण के साधनों में कर्मयोग की विशेष महत्ता है।

कर्मयोगस्तु कामिनाम्।

अर्थात् विषयासक्त सांसारिकजनों के लिए कर्मयोग ही कल्याण का उत्तम साधन है।

गीता में कर्मयोग को ही महत्ता दी गई है। योग के तीनों अन्तर्विभागों ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का समीक्षात्मक विवेचन करके तथा कर्म–मीमांसा को भली–भांति समझाकर अन्त में अठारहवें अध्याय में अखिल ब्रह्माण्डनायक योगेश्वर श्रीकृष्ण ने इसी एक अटल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि समता का भाव रखकर ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करता

हुआ ही मनुष्य परमसिद्धि का भाजन बनता है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः, संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं, यथा विन्दति तच्छृणु।।

(गीता 18/45)

राग–द्वेष रहित होकर तत्परता से अपने कर्तव्य कर्मों के सम्पादन में लगा हुआ मनुष्य ईश्वर प्राप्ति रूप परम सिद्धि को पा जाता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य किस प्रकार सिद्धि को पा जाता है, उसे तू मेरे से सुन–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां, येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य, सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता 18/46)

मनुष्य को अपने प्रत्येक कर्म को करते समय इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि सम्पूर्ण प्राणियों के सहित यह समस्त जगत ईश्वर से उत्पन्न हुआ है और ईश्वर से व्याप्त है। इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाले सर्व शक्तिमान, सबके आधार और सबकी आत्मा परमेश्वर ही हैं। ऐसा समझकर परम श्रद्धा और विश्वास के साथ अपने समस्त कर्मों में अहंता ममता और फलेच्छा को त्यागकर भगवान की आज्ञानुसार उन्हीं की प्रसन्नता के लिए कर्म करने चाहिए। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से किये जाने वाले अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा परमेश्वर की पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

लोग कहते हैं ''पहले योग्य बनो, फिर इच्छा करो।'' वेदान्त कहता है ''पहले योग्य बनो, इच्छा करने की कोई आवश्यकता नहीं।'' जो पत्थर दीवार में लगाए जाने योग्य है, वह रास्ते में पड़ा हुआ कभी नहीं मिल सकता। यदि तुम परमात्मा के अटल नियम द्वारा अपने में योग्यता उत्पन्न करोगे तो प्रत्येक वस्तु आप से आप तुम्हारी ओर चली आयेगी। जलता हुआ लैम्प पतंगों को बुलाने नहीं जाता, पतंगे स्वयं लैम्प के चारों ओर इकट्ठे होते हैं।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

एक अद्भुत कृपा–लीला

अन्तू राम यादव, प्रयागराज–211004

प्रातः स्मरणीय योगिराज अनन्त श्री सद्गुरु भगवान के युगल चरणारविन्दों में नमन करते हुए आइए गुरूदेव भगवान के कुछ पावन चरित्रों एवं उनकी कृपा लीलाओं के बारे में चिन्तन–मनन किया जाये। उनकी सभी कृपा लीलाओं का वर्णन करना तो सम्भव नहीं है। हरि अनन्त हरि–कथा अनन्ता। सुबह–शाम श्री प्रभु जी की आरती में नित्यप्रति हम कहते हैं–''सब पर्वत स्याही करूँ, घोरूँ समुन्दर जाय। धरती का कागज करूँ फिर भी स्तुति लिखी न जाय।'' उनकी कृपा–लीलाओं में से एक कृपा–लीला की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

श्री प्रभु जी के तेजांश बच्चे अर्थात् हमारे कई आदरणीय गुरूभाई श्री प्रभु जी के आश्रमों की स्थापना करके उनके बताये हुए योग मार्ग का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं और उनके संस्कारी लोगों को सिद्धयोग परिवार से जोड़कर बहुत ही सराहनीय कार्य कर रहे हैं। मुझे भी श्री गुफा, ऋषिकेश, अमृतसर, अलुपुर, सालवन, बामनी, सहारनपुर, दिल्ली, कुरुक्षेत्र, घरौंदा, काँगड़ा, मण्डी, भिवानी, गंगापुर सिटी, जयपुर और वाराणसी जैसे कई आश्रमों पर जाने का शुभअवसर प्राप्त हुआ। मैं जहाँ–जहाँ भी गया अपने अधिकांश गुरु भाईयों से यही सुनने को मिला कि मैं अपने गुरूदेव के प्रति आज श्रद्धा के जो विचार उमड़कर सामने आ रहे हैं और उनकी कृपा–लीलाओं का बोध जो आज हो रहा है, काश! अगर भौतिक रूप से श्री गुरूदेव जी के रहते आये होते तो हम अपना पूरा जीवन उनके चरणों में समर्पित कर देते। हमारे गुरूदेव सर्व समर्थ होते हुए भी साधारण कुर्ता–धोती में अपने को ऐसा छिपाये रहे कि कोई उनको समझ ही नही सका। साधारण जीव की बात छोड़िये हमारे गुरूदेव के प्रति खेचर सिद्ध अन्तर्द्रष्टा योगिराज देवरहा बाबा के ये शब्द हैं–''हे मेरी आत्मा! और योग–योगेश्वर महाप्रभु श्रीरामलाल जी के पूर्ण उत्तराधिकारी, आप को जन–साधारण के बीच में रहकर जन–कल्याण के लिए गाँव–गाँव, शहर–शहर विचरते हुए देखकर महान आश्चर्य होता है कि क्या ये वही योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हैं, जिनके स्थूल दर्शनों के लिए लोकाधिपति सदैव हाथ जोड़ प्रार्थना करते रहते हैं। आप अपने को कैसे छिपाये रहते हैं, लाख प्रयत्न करने पर भी यह रहस्य मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।'' जरा सोचिए, जब देवरहा बाबा ऐसे अन्तर्द्रष्टा महात्मा हमारे गुरूदेव को नहीं समझ पाये तो हम ऐसे पामर जीव कैसे

समझ पाते। अस्तु।

आइए अब अपने मुख्य विषय पर चिन्तन करें। प्रयाग राज कुम्भ की एक सच्ची घटना का उल्लेख किया जा रहा है। इस घटना को आपके समक्ष प्रस्तुत करने का केवल मात्र यही उद्देश्य है कि हम अपने गुरूदेव को कुछ तो समझ सकें कि वे क्या हैं? हमारे एक वरिष्ठ गुरुभाई हैं, जब वे आप बीती इस घटना का वर्णन करते हैं तो उनके नेत्रों से झर–झर आँसुओं की धारा बहती रहती है। समय का स्मरण ठीक से नहीं हो पा रहा है। कुम्भ का अवसर था और उस दिन कोई पर्व भी था जिसके कारण लोगों की काफी भीड़ थी। गुरूदेव सभी को लेकर त्रिवेणी घाट (संगम) पहुँचे। भीड़ के कारण संगम स्नान–स्थल तक जाने के लिए कई नावें करनी पड़ीं। हमारे गुरुभाई जी अपनी पत्नी के साथ एक नाव में सवार हुए जिसमें लगभग तीस गुरुभाई–बहन बैठे थे। उस समय किले से लेकर संगम तक नुकीले लंगर की सहायता से यमुना जी में पीपे का डिवाइडर बनाया गया था जिससे सभी नावें एक तरफ से जायें और दूसरी तरफ से वापस आवें। सभी नावें संगम तक पहुँचीं और सब लोग स्नान करके अपनी–अपनी नावों में बैठकर वापस आने लगे। गुरूदेव भगवान की नाव के साथ कई नावें तो किनारे आ गईं परन्तु वह नाव जिसमें भाई जी अपनी पत्नी के साथ बैठे थे वह कुछ पीछे रह गई। गुरूदेव भगवान नाव से उतर कर किनारे खड़े हो गये। उमा बहन कहने लगीं अब चलो सब लोग आ गये। गुरूदेव बोले अभी कुछ लोग नहीं आये हैं। बहन जी बार–बार यही कहती रहीं कि जो नहीं आये हैं, आ जायेंगे, चलो काफी देर हो गई है परन्तु गुरूदेव भगवान जमीन पर अपनी छड़ी टिकाये खड़े रहे और अपलक दृष्टि से यमुना जी की तरफ देखते रहे। उमा बहन की बातों को सुनी–अनसुनी करके गुरूदेव भगवान अपने स्थान से टस से मस नहीं हुए क्योंकि अन्तार्यामी गुरूदेव भगवान को अभी आगे होने वाली अनहोनी घटना का पूरा–पूरा पता था।

किले की तरफ से आखिरी डिवाइडर के पीपे से मोड़कर नाव को किनारे लाना था। पीपे में लगा हुआ कोई लंगर जल की सतह से कुछ ही नीचे था, नाव मोड़ते समय झटके से लंगर का नुकीला भाग नाव में लगा और नाव में छेद हो गया। छेद होते ही नाव के अन्दर पानी भरने लगा। भरते हुए जल को मल्लाह ने देख लिया था परन्तु किसी से बताया नहीं। वह समझ रहा था कि अगर इसकी जानकारी नाव में सवार लोगों को हो गई तो लोग घबरा जायेंगे। मल्लाह तेजी से पतवार चलाते हुए नाव को किनारे लाने का अथक प्रयास कर रहा था। किनारा थोड़ा दूर रह गया था परन्तु मल्लाह को यह जानकारी थी कि यहाँ जल ज्यादा गहरा नहीं है, सब लोग जल में उतर सकते हैं, तभी बड़ी तेजी से मल्लाह ने कहा कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी से आप सभी लोग अपना–अपना सामान समेट कर तुरन्त नाव से जल में उतर कर किनारे चले जाइए, यहाँ जल गहरा नहीं है। आनन–फानन में सभी लोग

अपने सामानों के साथ जैसे ही नाव से जल में उतरे, नाव एकाएक यमुना जी में डूब गई। यह देखकर सभी गुरु भाई–बहन स्तब्ध रह गये कि यह क्या हो गया? मल्लाह की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। वह बार–बार यही कह रहा था कि नाव को तो बीच धारा में ही डूब जाना चाहिए था, यहाँ तक आई तो कैसे आई? गुरूदेव भगवान की तरफ बार–बार इशारा करके मल्लाह यही कह रहा था कि उनकी कृपा–लीला अपरम्पार है। उनकी लीला को समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

जब सभी गुरु–भाई बहन किनारे आ गये तब गुरूदेव भगवान ने उमा बहन से कहा कि अब चलो। इतनी देर तक गुरूदेव भगवान के वहाँ ठहरने का कारण न तो उमा–बहन समझ सकीं और न अन्य लोग जो उनके साथ थे। सभी लोग कैम्प में आ गये। किस प्रकार से गुरूदेव भगवान ने तीस लोगों के प्राणों की रक्षा की, इसकी चर्चा कैम्प में कई दिनों तक होती रही परन्तु गुरूदेव भगवान ने अपने मुखार्विन्द से एक शब्द भी नहीं कहा और बिल्कुल अनजान से बने रहे। हमारे गुरूदेव भगवान की अन्तर्यामिता का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। ऐसे हैं हमारे गुरूदेव, जो सदैव अपने बच्चों की रक्षा करते रहे और आज भी रक्षा कर रहे है। अगर उनकी करुणा–कृपा का हमें आभास नहीं हो पा रहा है तो इस संबंध में एक भजन के चन्द शब्द उल्लेखनीय है–

"उनकी करुणा में कोई कमी है नहीं, पात्रता में हमारी कमी रह गई।" गुरूदेव भगवान जो अपने आपको छिपाये रहे, इसमें भी हमारा कोई न कोई हित अवश्य निहित होगा। हमारे कल्याण को ध्यान में रखकर ही वे ऐसी लीला किये होंगे, ऐसा दृढ़ विश्वास अपने मन में पैदा करके हमें गुरूदेव भगवान के प्रति सदैव श्रद्धा और भक्ति का भाव बढ़ाते रहना चाहिए। अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा–याचना करते हुए निम्न शब्दों के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूँ–

"बिनु नौका ही तैरा दे, मेरा माझी है अनोखा।
ना छोड़ो इसका दामन, अब पाके ऐसा मौका।।"
सादर जयगुरुदेव।

श्री गुरूदेव भगवान का एक अकिंचन बालक
अन्तू राम यादव
301, न्यू मेंहदौरी, तेलियरगंज, प्रयागराज–211004
फोन 09936678368

अजपा गायत्री मंत्र

—मनमोहन कृष्ण त्रिखा

'मंत्र' का अर्थ शास्त्रों में 'मनः तारयति इति मंत्रः' के रूप में बताया गया है, अर्थात् मन को तारने वाली ध्वनि ही मंत्र है। वेदों में शब्दों के संयोजन से ऐसी ध्वनि उत्पन्न की गई है, जिससे व्यक्ति का मानसिक कल्याण हो।

श्री सद्गुरुदेव भगवान जी के मुखारविंद से जो अजपा गायत्री के बारे में सुना है और जिस मंत्र की श्री गुरुदेव भगवान जी ने हम सबको दीक्षा दी है, उसके महत्त्व/लाभ का वर्णन करना बहुत मुश्किल है। हमारे पता नहीं कि कौन से अच्छे कर्म उदय हुए होंगे कि श्री गुरुदेव भगवान जी ने हमें यह मंत्र दिया।

यह तो हम सबको मालूम है कि जिस मंत्र की श्री गुरुदेव भगवान जी ने हमें दीक्षा दी है उसी का नाम अजपा गायत्री है। अजपा गायत्री का वर्णन हमारे शास्त्रों में इस प्रकार से दिया गया है।

अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।
अस्याः सङ्कल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।33।।
योग चूड़ामणि उपनिषद अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति।। *योग चूड़ामणि उपनिषद (34)*

इसका वर्णन ध्यानबिंदु उपनिषद् एवं गोरक्ष संहिता में भी किया गया है।

अर्थात् योगियों के लिए मुक्ति प्रदात्री यही अजपा गायत्री है। इसके संकल्प मात्र से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। इसके समान न कोई विद्या है, न कोई जप है, न कोई ज्ञान है। न पहले हुआ है और न भविष्य में होगा।

यह तो हम जानते हैं कि उपनिषद् वेदों का एक हिस्सा है। देखिए श्री गुरुदेव भगवान जी ने हम सब पर अहैतुकी कृपा करके इस अजपा गायत्री का हम सबको मंत्र प्रदान किया है। इसके जपने से सभी पाप समाप्त हो जाते हैं, कट जाते हैं, दूर हो जाते हैं और योगियों को मोक्ष/मुक्ति मिल जाती है।

हम श्री गुरुदेव भगवान जी के इस ऋण को नहीं चुका सकते चाहे कितने भी हमें जन्म लेने पड़ें। हमें यह जरूर करना चाहिए कि हम नित्य नियम से इस अजपा गायत्री का जप करें और ध्यान करें। इसमें हमारा ही लाभ है, हमारा ही कल्याण है। उन्होंने तो किसी हेतु के बिना हम पर कृपा कर दी, अब इसका लाभ उठाना या न उठाना हम पर निर्भर करता है।

संत मलूक दास जी ने अजपा जप की महिमा इस प्रकार से लिखी है—

अब तो अजपा जपु मन मेरे,

सुर नर असुर टहलुआ जाके, मुनि गंधर्व हैं जाके चेरे।
दस औतार देखि मत भूलौ, ऐसे रूप घनेरे,
अलख पुरुष के ह्मथ बिकने जब तैं नैननि हेरे।।
कह मलूक तू चेत अचेता काल न आवै नेरे।

अर्थात्—हे मन मेरे अब तू अजपा जप का जाप कर ले। इसके देवता, राक्षस, मनुष्य, मुनि, गंधर्व, सब चेरे (सेवक, शिष्य) हैं। 10 अवतारों को देखकर भूल में मत पड़, ऐसे तो कई रूप हैं। यह अजपा जप उस अलख पुरुष, परम तत्व, परब्रह्म परमेश्वर, सच्चिदानन्द के दर्शन करवाता है।

हे बेहोश मानव (कोई धन के नशे में बेहोश है, कोई बल, कोई पद के नशे में, कोई जायदाद के नशे में, तो कोई सुंदरता के नशे में बेहोश है, कोई परिवार के नशे में बेहोश है कि मेरा तो बहुत बड़ा परिवार है) होश में आ जा/ चेत जा और अजपा जप को जप ले, इससे काल नजदीक नहीं आएगा।

श्री सद्‌गुरु भगवान जी हमेशा हमें मंत्र जप और ध्यान करने के लिए प्रेरित करते रहते थे और कहा करते थे कि इससे सभी प्रकार के कार्य सिद्ध हो जाते हैं यानी कि सभी प्रकार के कार्यों में सफलता प्राप्त होती है। उपनिषदों में ध्यान योग का वर्णन इस प्रकार से किया गया है—

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

(1) ध्यानबिन्दु उपनिषद् कई योजन (1 योजन = 13 किलोमीटर) तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है; इसके समान पापों का नष्ट करने वाला कभी कुछ नहीं हुआ है।

अर्थात् यदि पर्वत की तरह (अनेक जन्मों के संचित) अनेक योजन व्यापक पाप हों तो भी ध्यान योग साधना द्वारा उनको नष्ट किया जा सकता है अन्य किसी साधन से उनका नाश करना संभव नहीं है।

मंत्र जप करने से और ध्यान करने से श्री गुरुदेव भगवान प्रसन्न हो जाते हैं और हमारे सभी प्रकार के कर्मों का विनाश कर देते हैं, यानी कि सभी कर्म नष्ट कर देते हैं और हमारी हृदय ग्रंथि को खोल देते हैं जिससे सभी प्रकार के संशय समाप्त हो जाते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते सर्वकर्माणि गुरोः करुणया शिवे।। *(191) गुरु गीता*

इसलिए श्री गुरुदेव भगवान जी की आज्ञा को मानते हुए यदि हम मंत्र जप और ध्यान करेंगे तो हमारा कल्याण श्री गुरुदेव भगवान अवश्य अवश्य करेंगे।

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्गुरु देव जी द्वारा)

प्रश्न–हे गुरुदेव आपने मेरी अहिंसा विषय में मेरे मन की शंकाओं को भली प्रकार से निवृत्त कर दिया है। मैं भली प्रकार से समझ गया हूँ कि अहिंसा धर्म का पालन करने वाला अवश्य ही योग के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और यह भी मैं भली प्रकार से समझ चुका हूँ कि बिना योग–समाधि के मनुष्य पूर्णरूपेण अहिंसक नहीं बन सकता।

तत्र कोमोहः कः शोक एकत्वंमनु पश्यतः।

अर्थात् जो व्यक्ति एकत्व का दर्शन कर लेते हैं उनकी द्वैत बुद्धि समाप्त हो जाती है। जो व्यक्ति प्राणिमात्र के अन्दर अपने आपको ही अवस्थित देखेगा उसके मन से हिंसा की भावना तो स्वाभाविक रूप से नष्ट हो जायेगी, क्योंकि वह यह भली प्रकार से समझ जावेगा कि जितने ये शरीर दिखलाई देते हैं यह सबके सब मेरे अपने हैं, और इनमें मेरा नित्य का अवस्थान है, ऐसी स्थिति में वह किसी से विरोध करेगा ही क्यों? अपने आप ही उसके मन में अहिंसा की पराकाष्ठा आ जायेगी। किन्तु हे गुरूदेव! आपने शेष यमों का और नियमों का यथार्थ स्वरूप अभी मुझे नहीं समझाया है। कृपा करके वह भी मुझे समझाइये। अहिंसा के बाद में दूसरा यम सत्य बतलाते हैं। अतः आप कृपा करके मुझे समझाइये कि सत्य का क्या स्वरूप है? और उसको पालन करने वाले व्यक्ति किस फल के भागी हुआ करते हैं?

उत्तर–हे पुत्र! देखो मन, वाणी और कर्म से जो एक ही भाव व्यक्त किया जाता है यथार्थ में सत्य वही कहलाता है। सत्यवादी मनुष्य जो मन में विचार करेगा वही वाणी से भी कहेगा और जो वाणी से कहेगा वही आगे क्रियात्मक रूप से करेगा भी। यही सत्यवादी महात्माओं की पहचान भी है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मणयेकं महात्मनाम्।

अर्थात् जो भाव मन में छुपे हुए हों वही भाव वाणी से व्यक्त करे और जो वाणी से कह दे उसका पालन भी यथावत् करे। वही मनुष्य सत्यवादी कहला सकता है। तुमने अपने प्राचीन इतिहास की बातें पढ़ी होंगी उनमें जिस ऋषि–मुनि ने मन से विचार करके जिस प्रकार की वाणी कह दी उसका पालन भी उसी प्रकार से किया। तभी वह पूर्णरूपेण सत्यवादी कहलाया और वही महात्मा का पद वाला रहा है। इसके अतिरिक्त–

मनस्यन्नत, वचस्यन्नत, कर्मण्यन्नतदुरात्मनाम्।

अर्थात् मन में कोई और भाव छुपे हुए हैं और वाणी से कुछ और भाव कहता है और क्रियात्मक रूप से कुछ और करता है। यह लक्षण दुरात्माओं के होते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी सत्यनिष्ठ नहीं हो सकते और न ही उनकी वाणी कभी भी क्रियाफल वाली हो सकती है। सत्य की महिमा हमारे पुराने इतिहासों एवं स्मृतियों में खूब भली प्रकार से समझाई गई है। पढ़िये उपनिषदों में और हमारे अन्य ग्रन्थों में सत्य सिद्धान्त को किस प्रकार से समझाया है–

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म। *तैत्रि. 2/1/1*

सत्य प्रभु का रूप है वाणी का तप है–

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो य पश्यन्ति यतयः क्षीणादोषाः।।

सत्यमेव जयते (1) नानृतं सत्येनः पन्था बिततो देवयान्।

अर्थात् सत्य, ज्ञान, ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अन्तःशरीर में जो शुभ्र ज्योतिर्मय आत्मा को देखता है। जिसको दोषों को क्षीणकर यति लोग मुश्किल से देख पाते हैं। हमेशा सत्य की ही जय होती है। देवों का मार्ग सत्य से विस्तृत है।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के 23वें श्लोक में सत् शब्द को 'ब्रह्म' नाम बतलाया है। यथा–

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।

अर्थात् ॐ तत्, सत् यह तीन प्रकार का ब्रह्म का ही नाम है। इसी के द्वारा देव, यज्ञ व ब्राह्मणों का विधान हुआ। इसी प्रकार का संकेत उपनिषदों में स्थान–स्थान पर भरा है।

सत्यं ज्ञानमन्त ब्रह्म–तैत्रिय 3 2–1–1

सत्य ब्रह्म–वृहदारण्यक उपनिषद् 5–5–1

अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है। श्री विष्णु सहस्त्र नाम में भगवान को–"सत्यः सत्य पराक्रम" कहकर स्तुति की गई है। श्रीमद्भागवत् पुराण के दशम् स्कन्ध के दूसरे अध्याय में गर्भ स्तुति के वर्णन में श्री भगवान कृष्णचन्द्र को परम सत्य व सत्यात्मक शब्दों से सम्बोधित करके स्तुति की है। यथा–

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यंस्ययोनि निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यामृत सत्यनेत्रं न सत्यात्मकत्वां शरणाप्रपन्ना।।

अर्थात् हे प्रभो! आप सत्यव्रत, सत्य–परायण व तीनों कालों में परम सत्य हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का मुख्य साधन है, क्योंकि आप सत्यात्मक हैं।

उन सर्व शक्तिमान सच्चिदानन्दघन प्रभु का स्वरूप सत्य है। वे स्वयं सत्य है, सत्य स्वयं परब्रह्म है। सत्य की महाशक्ति का वर्णन करते हुए हमारे पूर्वजों ने बड़े ऊँचे स्वर से कह दिया कि–

सत्येन वायुधावति सत्येनादित्यो, रोचते दिवि सत्य वाचः।
प्रतिष्ठा सत्ये सर्व प्रतिष्ठितं, तस्मात्सत्य परं वदन्ति।।

–नारायणोपनिषद् 79

सत्य ही जय का मुख्य साधन है–

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पंथा विततो देवयानः।
येना क्रमन्त्यृयोह्यसप्तकामाः, यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानं।।

–मुण्डकोपनिषद् 3/1/6

अर्थात् सदा सर्वदा सत्य ही की जय होती है। इस सत्य का अवलम्बन लेकर ऋषिलोक आप्तकाम हो गये तथा उस सत्य के परम प्रतिष्ठा रूप प्रभु को सरलता से प्राप्त कर लिया। मर्यादा भगवान श्री रामचन्द्र जी के वनवास हो जाने के बाद उनको लौटाने के विचार से गये हुए वशिष्ठ, वामदेव आदि गुरुजनों के प्रति सत्य की महिमा को हृदय में धारण करते हुए श्री रामचन्द्र जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा–

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्,
तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्यो लोके प्रतिष्ठतः।
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव ही मेनिरे,
सत्यवादी ही लोकेस्मिन परं गच्छति चाव्यम्।।
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृत वादिनः,
धर्म सत्य परो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्य धर्मः सदाश्रितः,
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परमपदम्।।
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च,
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्यपरो भवेत्।।

–वाल्मीकि रामायण–अयोध्याकाण्ड सर्ग 1/10–14

अर्थात् सत्य ही सनातन राजवृत है। राज्य की व लोक की सत्य ही में प्रतिष्ठा है। ऋषि, मुनि व देवता सभी ने सत्य को माना है यही सनातन धर्म है। सत्यवादी ही इस लोक में अक्षयपद को प्राप्त करता है। जिस प्रकार मनुष्य सर्प से डरते हैं इसी प्रकार अनतृवादी से डरना चाहिये, क्योंकि इस संसार में सत्य ही परमतत्त्व है व सभी शुभों का मूल है।

इस लोक व परलोक में सत्य ही ईश्वर है, धर्म सदा सत्य के आश्रित है, सर्व विश्व का मूल है, सत्य से बढ़कर कोई तत्व नहीं है, सत्य ही परम तत्व। सभी दान, अनुष्ठान, यज्ञ व तप सत्य पर आधारित हैं। इसी प्रकार चारों वेद सत्य द्वारा ही प्रतिष्ठा पाने वाले हैं। अतः कल्याण चाहने वाले को सत्यपरायण होना चाहिये। इस प्रकार सत्य की महान महिमा को बतलाकर भगवान श्री रामचन्द्रजी अपने व अपने पिताजी के सत्य वचन के पालन के लिये अयोध्या नहीं लौटे। ठीक इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रामायण में स्पष्ट लिखा है–

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये, वेद पुरान विदित मनु गाये।
धर्म न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना।
नहिं असत्य सम पातक पुञ्जा, गिरिसम होइ कि कोटिक गुञ्जा।।

इसी प्रकार अन्य संतों की वाणियों में भी सत्य की महान महिमा का वर्णन कूट–कूट कर भरा पड़ा है–

जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप।

अर्थात् जिसके हृदय में सत्य है वहीं प्रभु का भी वास है। ठीक यही भाव महाभारत में अन्यान्य आर्य ग्रन्थों में भरे पड़े हैं–

अश्वमेध सहस्त्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेध सहस्त्रेभ्य सत्यमेव विशिष्यते।।
सर्व वेदाविगमनं सर्व तीर्थावगाहनम्।
सत्यं च वचनं राजन समं वा स्यान्नैवासनम्।।
नास्ति सत्य समोधर्मो न सत्याद्विशिष्यते परम्।
न तीव्रतरं किंचिदनृतादिहि विद्यते।।

—महाभारत आदि पर्व 74/102–105

अर्थात् सहस्त्रों अश्वमेध यज्ञ की तुलना करें तो सत्य ही उत्कृष्ट है। इसी प्रकार सारे वेदों का पढ़ना, तीर्थ–स्नान सत्य की तुलना में नहीं आ सकते। सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और असत्य के समान घोर पातक नहीं है।

महाभारत के शांति पर्व 162वें अध्याय में श्री भीष्म पितामह ने बड़े ऊँचे शब्दों में सत्य का व्याख्यान किया और अन्त में यहाँ तक कह दिया कि–

नान्तो शब्दो गुमानां च वक्तुं सत्यस्यपार्थिव,
अत: सत्यं प्रशसन्ति विप्रा सपितृदेवता।।

इसी प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व में–

सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्नि प्रदीप्यते।
सत्येन मारुतो वान्ति सत्ये सर्व प्रतिष्ठतम्।।
सत्येन देवा प्रीयन्ते पितरा ब्राह्मणास्तथा।
तस्मादद्दु परो धर्म एतस्मात्त्सत्यन्नलंघयेत्।।
मुनय: सत्य निरता: मुनय: सत्य विक्रमा:।
मुनय: सत्य शपथास्तस्मात्सत्यं विशिष्यते।।

अर्थात् सत्य की महिमा का वर्णन कहाँ तक करें। सब ऋषि, मुनि, देवता स्थान–स्थान पर सत्य की महिमा गाते हैं। सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से वायु बहता है, अग्नि तपता है, सत्य से ही सब प्रतिष्ठित हैं। देव लोग, मुनि लोग, ब्राह्मण सत्य से प्रसन्न होते हैं। अत: कभी भी सत्य का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। सब ऋषि–मुनियों का बल सत्य ही है। इसी प्रकार के भावों से वेद, शास्त्र व पुराण भरे पड़े हैं।

श्री मुनि जी महाराज अपनी मनुस्मृति अध्याय आठ के 96वें श्लोक में निशंक सत्यवादी को बड़ा ऊँचा महत्व दिया है। यथा–

यस्य विद्वान हि वदत:, क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते।
तस्मान्नदेवा श्रेयांसो लोके, अन्यं पुरुषं विदु:।।

—मनुस्मृति अध्याय 8 श्लोक 96

अर्थात् निशंक सत्यवादी का देवता लोग भी परम आदर करते हैं, व उसको बड़ा मानते हैं।

इसी प्रकार मनुस्मृति के चौथे अध्याय में प्रिय एवं सत्य बोलने को ही सत्य सनातन धर्म बतलाया है। यथा–

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात् सत्यमप्रियं।
प्रियं च नानृतं, ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

—मनु. अ. 4–138

अर्थात् सत्य बोलो, किन्तु प्रिय सत्य बोलो। कटु सत्य न ऐसा बोलो नहीं कि झूठ को सत्य सा बनाकर प्रिय बोल दो। कभी नहीं सत्य ही प्रिय शब्दों में बोलो। यही सनातन धर्म है। मनुष्य को मनसा वाचा कर्मणा सत्यवादी होना चाहिये।

वाणी से शब्द कहे जा सकते हैं। भाव छुपाया जा सकता है। किन्तु यह सब असत्य है, सत्य नहीं। जो किसी सभा में बैठकर सत्य को जानते हुए भी नहीं कहते वे इस प्रकार असत्य ही बोलते हैं—

ये तु सभ्या सदा ज्ञात्वा तूष्णीध्यायन्नासते।
यथा प्राप्त न ब्रुवते ते सर्वेऽनृत वादिनः।।

अर्थात् जो लोग सत्य को समझते हुये भी सत्य नहीं कहते वे सब अनृतवादी ही हैं। अतः मनसा वाचा कर्मणा सत्य बोलने वाला ही सत्यवादी कहला सकता है।

सत्य वचन व वाक्‌सिद्धि—

जो मनुष्य पूरी तरह मनसा वाचा कर्मणा सत्य बोलते हैं व अपने संकल्प मात्र को भी असत्य नहीं होने देते, उनकी बुद्धि में ऋत वास कर जाता है। वे लोग जो सोचते हैं वह सत्य है, जो कहते हैं वह सत्य है, उनकी कोई भी क्रिया असत्य नहीं हो सकती। योगदर्शन में भगवान पतंजलि जी आदेश करते हैं—

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

(साधनापाद सूत्र 36)

इस सूत्र पर व्यास भाष्य—

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति अमोघास्य वाग्भवति।

अर्थात् सत्य प्रतिष्ठित योगी जिसने अपने पूरे जीवन में असत्य नहीं बोला उसकी वाणी अव्यर्थ हो जाती है। उसको बिना प्रयत्न के वाक्–सिद्धि रहती है। उसके मुख से निकला वचन कभी मिथ्या नहीं होता।

अखिल अण्ड–ब्रह्माण्ड नायक परम सत्य स्वरूप भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने महाभारत में द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए प्रतिज्ञापूर्वक अपनी वाक्–सिद्धि को कहा है।

चलेद्धि हिमाञ्छैलो मेदनी शतधा भवेत्।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा, न मे मोघं वचो भवेत्।।
सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णो वाच्यो निगृह्यताम्।
हतमित्राञ्छ्रिया युक्तान्न, चिराद द्रश्यसेपतीन्।।

अर्थात् हिमालय अपने स्थान से विचलित हो जाये, पृथ्वी के टुकड़े–टुकड़े हो जायें और चाहे आकाश नक्षत्रों सहित गिर पड़े, किन्तु मेरी वाणी कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती। द्रौपदी आंसू पौंछो, बहुत थोड़े समय में तुम अपने पतियों को शत्रु–रहित भूमण्डल पर राज्यश्री युक्त देखोगी।

सत्यस्वरूप भगवान ने–''सत्यं ते प्रतिजाने''–कहकर उपरोक्त शब्द द्रोपदी से कहे और हुआ भी वही।

इसी प्रकार अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा को सांत्वना देते हुए भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र प्रयोग द्वारा उसके मृत शिशु को जीवन–दान देने के समय बार–बार प्रतिज्ञापूर्वक अपने सत्य को साक्षी रखते हुए कहा कि–

न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या, सत्यमेतद्भविष्यति।
एष संजीवयाम्येनं, पश्यतां सब देहिनाम्।।
नोक्तपूर्वमया मिथ्या, स्वैरेस्वपि कदाचन।
न च युद्धात्परावृत्तस्तथा संजीवतामयम्।।
यथा मे दयितो धर्मा, ब्राह्मणाश्च विशेषतः।
अभिमन्योः सुतो जातो, मृतो जीवत्वयन्तथा।।
यथाहं नाभि जानामि, विजयेन कदाचन।
विरोधन्तेन सन्तेन मृतो, जीवत्वय शिशु।।
यथा सत्यश्च धर्मश्च, मयि नित्य प्रतिष्ठतौ।
तथा मृतः शिशुमय, जीवतादभिमन्युजः।।
यथा कंसश्च केशी च, धर्मेण निहितौ मया।
तेन सत्येन बालोऽयं, पुनः सजीवतामयम्।।

–महा. अश्वमेध पर्व 68/18–23

अर्थात् अय उत्तरे मैं कभी भी असत्य नहीं बोलता हूँ, मेरी यह वाणी अवश्य ही सत्य होगी। सभी के देखते–देखते इस बालक को मैं जिला देता हूँ। मैंने आज तक मजाक में भी असत्य नहीं बोला है और न ही कभी युद्ध से पीछे हटा हूँ। उसी सत्य के फलस्वरूप यह बालक जी उठे।

जिस प्रकार मुझे धर्म व विशेषतः ब्राह्मण प्यारे हैं तो उसी के फलस्वरूप यह मरा हुआ अभिमन्यु का बालक जी उठे। यदि मैंने आज तक कभी विरोध नहीं किया है, तो इसी सत्य के फलस्वरूप यह मरा हुआ बालक जी उठे।

जिस प्रकार सत्य व धर्म मुझमें हर समय प्रतिष्ठित है, उसी के फलस्वरूप यह मरा हुआ अभिमन्यु का बालक जी उठे। यदि मैंने कंस और केशी को धर्म से मारा है (न कि विरोध से) तो इस सत्य के फलस्वरूप यह बालक जी उठे। इसी प्रकार अखिल विश्वात्मा ने स्वयं भी बार–बार सत्य की शपथ दी व फलस्वरूप अभिमन्यु का यह बच्चा जिन्दा हो गया।

हमारा अनुभव है कि जो लोग मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का पालन करते हैं, बहुत थोड़े समय में ही उनकी वाणी में शक्ति आ जाती है व क्रियाफल होने लगता है। पंजाब जिला करनाल में एक महात्मा एक जगह वास करते थे। वे अन्य अपनी सभी प्रकार की साधनाओं को करते हुए भी सत्य पालन को अपना ध्येय बनाये हुए थे। उनकी यह साधना थी कि मनसा, वाचा, कर्मणा जो भी क्रिया करते थे वे सत्य ही करते थे और अत्यन्त मृदुभाषी थे। उनकी वर्षों की साधना के फलस्वरूप उनके जीवन में सत्य चमक उठा था। वे जो भी किसी को कुछ कह दिया करते थे,

सत्यदेव भगवान की कृपा से वह पूरा होता था। उनके मन से किया हुआ कोई भी दृढ़ संकल्प विफल नहीं होता था। योगिराज भगवान पतंजलि देव जी के अनुसार उनकी वाणी क्रियाफल वाली हो गई थी। वे स्वयं इस बात को मानते थे कि मेरा जीवन सत्यदेव की आराधना से ही पूर्ण निर्भय व अन्य सभी विघ्न-बाधाओं से रहित है। सत्यपूर्ण ब्रह्म है और उसकी आराधना स्वयं परब्रह्म की आराधना है व सब प्रकार से ओज और तेज को बढ़ाने वाली है। अतः कल्याण की अभिलाषा वाले व्यक्तियों को भगवान पतंजलि जी के बतलाये हुए दूसरे यम सत्य को अपने जीवन में पूरी तरह अपनाने का प्रयत्न करना चाहिये। सत्य ही सब कल्याणों का मूल है।

प्रश्न—हे गुरूदेव! आपने जो सत्य की शास्त्रीय महिमा बतलाई, वह बिल्कुल ठीक है, किन्तु आज इस कलिकाल के जमाने में क्या कोई इस प्रकार का सत्यवादी व्यक्ति है, जिसकी वाणी सत्य हो जाती हो? सफल हो जाती हो? क्योंकि अभी-अभी आपने बताया था कि—"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्त्वं" अर्थात् योगी के सत्य प्रतिष्ठा हो जाने के बाद जैसा वह मुख से वचन कहता है, उसका फल तत्काल वैसा ही हो जाया करता है, तो हे गुरूदेव मैं उन्हें जानना चाहता हूँ कि जिनकी वाणी में इतनी ऊँची सफलता प्राप्त हुई हो?

उत्तर—हे पुत्र! तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है कि इस घोर कलिकाल के जमाने में इस प्रकार के सत्यनिष्ठ व्यक्तियों का मिलना तो असम्भव ही है, किन्तु फिर भी किसी का भी बीज नाश नहीं हुआ करता। भू-मण्डल पर इस प्रकार के व्यक्ति रहते ही हैं, मुझे एक घटना याद आ रही है।

जिला रोहतक के एक गांव में एक महात्मा अपने भक्त समाज में कहीं गये हुये थे। वह महात्मा पूर्ण सत्यवादी थे। उनका अपने जीवन में यह अनुभव था कि जब भी वे कोई किसी प्रकार का वचन देते थे वह पूर्णतया सत्य होता था। एक बार उन्होंने कहीं जाने का अपना कार्यक्रम निश्चित किया, उसे अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार वे जिस गांव में ठहरे हुए थे, वहाँ से 4 बजे उठकर बस-स्टैण्ड जाना था। बस-स्टैण्ड जा करके प्रातःकाल 6 बजे करके कुछ मिनट पर चलने वाली बस को पकड़ करके एक रेलवे के जंक्शन स्टेशन पर पहुँचना था। वहाँ से एक और गाड़ी पकड़नी थी, जो वहाँ से 7 बजकर 15 मिनट पर छूट जाती थी। उस गाड़ी में सवार हो करके किसी अन्य छोटे स्टेशन पर लगभग 9 बजे उतरना था जहाँ उनके सत्संगी उनके आगमन की प्रतीक्षा में बैठे इन्तजार कर रहे थे, किन्तु अकस्मात् घटना ऐसी घटी कि जिस गांव से प्रातःकाल 4 बजे उठ करके उस गांव से लगभग 6 मील की दूरी पर प्रातःकालीन जो बस पकड़नी थी उसमें बड़ा भारी व्यवधान पड़ गया। माघ का महीना था। प्रातःकाल 3 बजे ही बहुत वेग से वर्षा आरम्भ हुई, जिसमें ओले गिरने आरम्भ हुए और वह वर्षा बराबर बड़े जोरों से बरसती ही रही। श्री महात्मा जी ने बस-स्टैण्ड तक पहुँचने के लिए गांव वालों से कहकर एक बैलगाड़ी की व्यवस्था की हुई थी किन्तु इस तीव्रतम वर्षा और शीत ऋतु के आघात के कारण गाँव वाले बैलगाड़ी को ले जाने में भारी संकोच करने लगे और कहने लगे कि महाराज जी इस गहरी वर्षा में किस प्रकार बैलगाड़ी जा सकती है। सर्दी और वर्षा के कारण बैलों का तो कहना ही क्या कोई भी जिन्दा नहीं बच सकेगा और आपके बिस्तर बगैर सब भीग जायेंगे। इसलिए कृपा करके आप अपने इस प्रोग्राम को कैंसिल कर दीजिये। किन्तु महात्मा जी अपना प्रोग्राम अपने किसी अन्य

सत्संगियों को दे चुके थे और यदि वह इस प्रोग्राम को कैंसिल करते हैं तो उनकी वाणी असत्य हो जाती है। ऐसी स्थिति को देखकर महात्मा जी ने उन गांव वालों से कहा कि भाई ठीक है तुम बैलगाड़ी को मत भेजो और हम अपने बिस्तर व अन्य सामान भी यहीं छोड़ देते हैं। तुम ये सब सामान कल या परसों तक वर्षा बन्द हो जाने के बाद यथा स्थान हमारे यहाँ पहुँचा देना और हम अभी छाता लेकर चलते हैं जिससे हम बस स्टैण्ड पर जाकर पहली बस को पकड़ लें, और अपने दिये हुए वचनानुसार यथा समय दूसरी जगह पर पहुँच जायें। यह कहकर वह महात्मा जी गांव वालों के बार–बार हठपूर्वक विनय करने पर भी घनघोर वर्षा में ही छाता लेकर बस स्टैण्ड जाने के लिये निकल पड़े, किन्तु बड़ा ही आश्चर्य हुआ। और वह यह कि महात्मा जी दस या बीस कदम ही मुश्किल से गांव के बाहर निकले होंगे कि तत्काल वर्षा बन्द हो गई। शुक्ल पक्ष की रात्रि थी इसलिये चन्द्रमा निकल आया। ऐसी स्थिति को देखकर गांव वालों ने भी तत्काल बैलगाड़ी को जोत लिया और महात्मा जी का सब सामान बैलगाड़ी में रखकर एवं श्री महात्मा जी को बैलगाड़ी में बैठाकर बस स्टैण्ड ले चले। किन्तु बस स्टैण्ड पहुँचते–पहुँचते जिस बस में सवार होना था वह बस निकल गई और उसके बाद में चलने वाली दूसरी बस भी निकल गई। महात्मा जी लगभग पौने आठ बजे बस स्टैण्ड पर पहुँचे। ऐसी स्थिति में साढ़े आठ या नौ बजे चलने वाली ही बस उनको मिल सकी। जिसमें सवार होकर महात्मा जी उस रेलवे स्टेशन के लिए चल पड़े जहाँ से गाड़ी में जाना था। गांव वालों ने बार–बार कहा कि महाराज जी आपका यह व्यर्थ प्रयास है। वह गाड़ी तो ठीक सवा सात बजे रेलवे स्टेशन से चली जाती है और आप यहाँ नौ बजे सवार हो रहे हैं। आपको यह गाड़ी किसी भी प्रकार से नहीं मिल सकती। अबकी बार आप अपने वचन का पालन नहीं कर सकेंगे। किन्तु बड़ी भारी आश्चर्य की बात थी कि महात्मा जी जिस बस में सवार हुए थे उस बस में रेलवे फाटक से निकल के ही उस शहर की ओर जाना था जहाँ से उन्होंने रेलवे स्टेशन जाकर गाड़ी पकड़नी थी। जब वह बस रेलवे लाइन को पार करने लगी तो महात्मा जी को जिस गाड़ी में सवार होना था, वह गाड़ी चलने के लिये रेलवे स्टेशन पर सीटी दे रही थी। उसकी सीटी को सुन करके गांव वालों ने कहा कि महाराज जी बड़े आश्चर्य की बात है कि गाड़ी तो अभी तक खड़ी है, किन्तु यह गाड़ी मिल तो आपको अब भी नहीं सकती। क्योंकि यह सीटी दे रही है और आप बस के द्वारा अभी शहर पहुँचेंगे और वहाँ पर तांगे या रिक्शा से स्टेशन पहुँचेंगे, वहाँ जाकर टिकट खरीदेंगे तभी आप गाड़ी में सवार हो सकेंगे। अभी तो आपको आधा घण्टे की देरी और लगेगी और गाड़ी चलने के नाम की सीटी दे रही है। इसलिए आप कितना भी पुरुषार्थ कर लें किन्तु यह गाड़ी आपको नहीं मिलेगी। महात्मा जी ने उत्तर दिया कि अच्छा भाई! हम तो अभी कदम आगे बढ़ाते हैं, किन्तु यह ईश्वराधीन है कि वह हमें मिल सकेगी या नहीं। इस प्रकार बातें करते–करते वह बस अपने शहर वाले बस–स्टैण्ड पर पहुँच गई। वहाँ उस शहर के उनके सत्संगी उस बस का इन्तजार कर रहे थे। वे समझते थे कि इसी बस में गुरु जी को आना है, बस भी दो घण्टे की देरी से यथा स्थान बस–स्टैण्ड पहुँची। वहाँ जो सत्संगी लोग इकट्ठे हुए थे उन्होंने कहा कि महाराज जी! प्रोग्राम कैन्सिल कर दीजिये, वह तो 4 घण्टे पहले यहाँ से निकल गई। अब तो आप कल की गाड़ी का प्रोग्राम निश्चित कीजिये। किन्तु महात्मा जी ने कहा कि गाड़ी चली गई

होगी तो चली गई होगी, किन्तु हमें रेलवे स्टेशन को तांगा करवा दो। सत्संगी लोगों ने गुरुदेव जी की आज्ञा का उल्लंघन न करके दो तांगे करके महाराज जी को लेकर चल दिये, किन्तु रेलवे स्टेशन पहुँच करके देखा तो बड़े ही आश्चर्य की बात थी कि वह गाड़ी खड़ी थी और चलने के लिये सीटी ही दे रही थी। महात्मा जी के सत्संगियों ने टिकट खरीद कर प्लेट फार्म पर जाकर सब सामान चढ़ा दिया व अपने गुरुदेव जी से कहा कि महाराज जी आप जरा जल्दी कीजिये गाड़ी जाने को हो रही है। किन्तु सभी सत्संगियों ने एक आश्चर्य देखा, ज्यों ही उनके गुरुदेव गाड़ी में बैठे त्यों ही वह गाड़ी चल पड़ी और जहाँ उन्हें जाना था वहाँ अपने वचन के अनुसार पहुँच गये। वहाँ पर भी सत्संगी लोग बराबर इन्तजार में थे। महात्मा जी के वहाँ पहुँच जाने पर उनको बड़ा भारी उत्साह हुआ।

प्रश्न—हे गुरुदेव महाराज जी! अपने वचन के अनुसार पहुँच गये और उन्होंने अपना कार्यक्रम भी निभा लिया, किन्तु यथा समय पहुँचने में व्यवधान तो हो गया। ऐसा क्यों हुआ? सत्यवादी के रास्ते में तो व्यवधान होना ही नहीं चाहिये।

उत्तर—हाँ पुत्र! ठीक है यह तो बिल्कुल ठीक है, सत्यवादी के रास्ते में इतना व्यवधान भी उचित नहीं था। मैं इन महात्मा जी को भली प्रकार से जानता हूँ। पहले इनके वचन में यत्किंचित भी न्यूनता नहीं हुआ करती थी, ये पहली बार का व्यवधान ऐसा था जो हो गया। इसका अर्थ यही है कि उनके सत्य भाषण में कुछ व्यवधान हुआ होगा, जिसके कारण उनके कार्यक्रम में भी व्यवध ान हो गया। अन्यथा यह बात तो बिल्कुल ठीक है कि सत्यनिष्ठ व्यक्ति के वचनों में कभी भी अन्तरायें नहीं हुआ करतीं और सत्यवादी ही अस्तेयी बन सकता है। अस्तेय का अर्थ है चोरी नहीं करना। एक व्यक्ति यदि मन में किसी बात को छुपाता है और किसी के भले के लिये वह वाणी से कोई कृत्रिम बात मिला कर कहता है बनावट से। मन में कुछ और है और ठीक बात को मन में चुरा लेता है तब उसी का नाम चोरी है। एक प्रकार से वह अपने मानस–भावों को वाणी के द्वारा चुराता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि के अन्दर जो अस्तेय नामक यम कहा है उसमें और इस वाणी आदि की चोरी में क्या अन्तर है? इस प्रकार से मानस भावों को यदि वाणी के द्वारा किन्हीं और भावों को जाहिर करता है तो वह भी एक प्रकार की चोरी ही कहलाता है?

प्रश्न—हे पुत्र! तुम्हारी यह बात तो बिल्कुल ठीक है। यह भी वाणी के द्वारा अर्थ का चुराना ही है, किन्तु श्री पतंजलि जी महाराज ने अस्तेय नामक जो यम कहा है, उसमें मणिमाणिक्य रत्न एवं स्वर्ण आदि को ही लक्षीभूत किया है—अर्थात् किसी दूसरे की वस्तु चाहे वह तिनका ही क्यों न हो, जिससे हम सांसारिक कर्मों को कर सकते हैं और वह वस्तु दूसरे की ही है, उसका बिल्कुल–बिल्कुल न लेना ही अस्तेय कहलाता है। जिस व्यक्ति के अस्तेय के अन्दर पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है, उसको सब प्रकार से सभी वस्तुओं का अपने आप ही पूर्णरूपेण लाभ होने लगता है। इसी बात को भगवान पतंजलिदेव अपने योग–दर्शन में बड़े स्पष्टीकरण के साथ लिखते हैं। यथार्थ में अस्तेय धर्म भी अहिंसा एवं सत्य की ही पूरी–पूरी पुष्टि करता है। ठीक शब्दों में तो किसी दूसरे के धन को कपट, चोरी, चालाकी से या बलपूर्वक अपहरण न करने का नाम ही अस्तेय है। कदाचित् कोई

व्यक्ति ऊँचे धन–धान्य की चोरी नहीं करता है और छोटी–छोटी वस्तुओं को चुरा लेता है तो यह भी चोरी ही कहलायेगी। ऐसा व्यक्ति अस्तेय–प्रतिष्ठ नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः तो–

अन्यदीये तृणे रत्ने, काञ्चने मौक्तिकेऽपिच।
मनसा विनिवृत्तिर्यातदस्तेयं विदुर्बुधा।।

अर्थात् किसी दूसरे के तृण, रत्न या मुक्ता आदि के चुराने में मन की वृत्ति न होने को अस्तेय कहा गया है। जिस व्यक्ति की अस्तेय में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है उसको सर्व रत्न उपस्थित होने लगते हैं यद्यपि उनकी उसको कामना नहीं रहा करती।

प्रश्न–हे गुरुदेव! जब किसी व्यक्ति की अस्तेय में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है और वह व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा किसी की भी चोरी नहीं करना चाहता तो उसके इतने बड़े त्याग का क्या फल निकलता है, कृपा कर इतना समझा दीजिये?

उत्तर–हे पुत्र देखो! श्री पतंजलि जी महाराज ने इसका उल्लेख तो अपने ही शब्दों में बिल्कुल स्पष्टीकरण के साथ किया है। पढ़ो योगदर्शन के साधनपाद का 37 वां सूत्र–

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

अर्थात् अस्तेय की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर योगी को सब प्रकार से सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। रत्न आदि सभी स्वयं ही प्राप्त होने लगते हैं।

प्रश्न–हे गुरुदेव! क्या ऐसे भी महापुरुष हैं जिनको कि अस्तेय प्रतिष्ठा होने पर धन–धान्य, रत्न आदि प्राप्त हुये हों? कृपाकर ऐसे महापुरुषों के बारे में मुझे समझाइये?

उत्तर–हे पुत्र! संसार में जितने परोपकारी पुरुष हुए हैं वे सब अस्तेय प्रतिष्ठा के ही ऊँचे उदाहरण हैं। हमारे प्राचीन इतिहास में तो ऐसे महापुरुषों की गणना की तो कमी है ही नहीं, किन्तु कलिकाल में भी महात्मा गांधी आदि के जीवन को देखो। यह सत्य अहिंसा एवं अस्तेय आदि के पूरे–पूरे पुजारी रहे और यह तुम स्वयं ही विचार लो उन्हें कौन–कौन सी संपत्तियाँ प्राप्त नहीं हुयीं? लोगों ने उन लोगों की स्मृतियों में अरबों रुपया खर्च कर दिया और अब भी खर्च करते जा रहे हैं। यही सर्व रत्नोपस्थान का यथार्थ अर्थ है।

शिष्य–हे गुरुदेव! आपके व्याख्यान से परम सन्तुष्टि हुई। मैंने सत्य अस्तेय एवं अहिंसा के सही–सही अर्थों को भली प्रकार से समझ लिया है। मैं अब यह भरसक प्रयत्न करूँगा कि यह तत्व मेरे जीवन में पूरी तरह से घटित हो जाये। हे गुरुदेव! आपके यह पवित्र उपदेश मेरे जीवन को परम पवित्र बना रहे हैं। वस्तुतः यदि मैं आपके उपदेशानुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि का पूर्ण पालन कर अपने आपको योगी बना सकूँ? पूज्य गुरुदेव! मैंने यह भली प्रकार से समझ लिया है कि इन साधनाओं को अपने जीवन में घटित करूँगा, तो अवश्य ही कृत–कृत्य हो जाऊँगा। मेरे मन में यह भली प्रकार से समा चुकी है कि अहिंसा सत्य आदि का पालन करने वाला व्यक्ति अवश्य ही पूर्णरूपेण कृतार्थ हो सकता है। हे गुरुदेव! आप कृपा कर मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं इन साधनाओं के लिये भली प्रकार सफल हो सकूँ। आपकी कृपा से ही ये सब साधनायें सफलता के उच्चतम् लक्ष्य पर पहुँचा सकती हैं।

सिद्ध योग पत्रिका आय–व्यय 2020–2021

आय		व्यय	
रु.		रु.	
629681/–	प्रा. शेष बैंक में पिछला जमा	149280/–	कागज, छपाई, टिकिट व लिफाफे
29053/–	सहयोग राशि	4000/–	बाइंडिंग
86000/–	वार्षिक शुल्क		
21693/–	बैंक ब्याज	613147/–	बैंक में जमा शेष
766427/–		766427/–	

सहयोग राशि देने वालों की सूची

1. 1100/– पं. किशन शर्मा रोहतक
2. 1100/– विजय कुमार जी रघुनाथपुर, विलासपुर, हिमाचल प्रदेश
3. 1100/– कृष्ण चन्द्र शर्मा बडाही (मण्डी)
4. 1200/– कमलेश कुमार गुप्ता, लखनऊ
5. 2101/– त्रिलोक चन्द राजेश कुमार गोयल, रोहिणी, दिल्ली
6. 300/– कल्पना गुप्ता, लखनऊ
7. 500/– राधेश्याम भारती, महाराष्ट्र
8. 500/– कपिल गोपाल भारती, पूना, महाराष्ट्र
9. 5000/– प्रकाश तोमर, धनौली, आगरा
10. 2500/– त्रिपुरारि पाण्डेय, बलिया
11. 501/– दयाशंकर त्रिवेदी, रायबरेली
12. 251/– राजेन्द्र शर्मा
13. 200/– राजवन्ती, गोहाना
14. 500/– जय कुमार शर्मा, मातंड
15. 500/– गोवरधन शर्मा, मातंड
16. 500/– राजेन्द्र प्रजापत, कुराना
17. 500/– कर्मवीर दहिया गुढ़ा
18. 1000/– संजय कुमार सिंह, वाराणसी
19. 500/– अशोक कुमार सिंह, वाराणसी
20. 500/– डॉ. आर. एस., वाराणसी
21. 500/– परमात्मानन्द जयसवाल, वाराणसी
22. 500/– शंभू कुमार सिंह, वाराणसी
23. 500/– कमलेश वकील, वाराणसी
24. 500/– सुशील कुमार सिंह, वाराणसी
25. 500/– राकेश कुमार सिंह, वाराणसी
26. 500/– गोपेश मालवीय, वाराणसी
27. 1100/– विनोद पाण्डेय, वाराणसी
28. 500/– राजेश गोपलिया, वाराणसी
29. 500/– श्रवण कुमार उपाध्याय, वाराणसी
30. 500/– बृजकिशोर, वाराणसी
31. 1100/– जे. पी. सिंह, वाराणसी
32. 500/– मदन सिंह, वाराणसी
33. 500/– जमुना गिरी, वाराणसी
34. 500/– आशुतोष कुमार सिंह, वाराणसी
35. 500/– भोला मिश्रा, वाराणसी

29053/–

प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग

जो लोग संसार में पूर्णत: लिप्त हैं तथा ईश्वर से विमुख हैं उनको प्रवृत्ति मार्ग का यात्री समझना चाहिए। जो लोग अपने सभी कारोबार बन्द करके, गृहस्थी का परित्याग करके तथा सबसे अलग होकर, वैराग्य धारण कर लेते हैं वे निवृत्ति मार्ग के अनुगामी हैं। यह त्याग एवं ज्ञान का रास्ता हैं, जो अत्यन्त कठिन एवं दुर्गम है। इसमें आँख, कान एवं जिह्वा को निष्क्रिय करना पड़ता है तथा इन्द्रियों को विषयों की ओर दौड़ने से रोकना होता है। मन को नियन्त्रित करके प्रभु को समर्पित करना पड़ता है। जब तक मन व इन्द्रियों पर व्यक्ति का पूर्ण रूप से अधिकार न हो जाए तब तक निवृत्ति मार्ग को अपनाना बड़ी भारी भूल है।

एक तीसरा मार्ग इन प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों को मिलाकर बनाया गया है। इसमें दोनों के गुणों की तथा नियमों की मिलावट रहती हैं। इस पथ के सबसे बड़े आचार्य श्रीकृष्ण हुए हैं। भोग में योग कमाने, गृहस्थी में रहते हुए विरक्त बने रहने, संसार के समस्त व्यवहार करते हुए भी त्यागी बनने, तथा सन्तान एवं पत्नी के साथ रहते हुए भी साधनरत रहने का उपदेश उन्होंने साधकों एवं जिज्ञासुओं को दिया। गीता में इस मार्ग को 'साम्य योग' कहा गया है। बौद्ध इसे 'मध्यम मार्ग' कहते हैं।

इस नवीन मार्ग में परमार्थ कमाने के लिए न तो किसी परिश्रम की आवश्यकता है और न कारोबार को समाप्त करने को। इसमें केवल भाव को परिवर्तित करना होता है। जिन कामों को हम अब तक करते रहे हैं उनको अपने लिए कर रहे हैं, अपनी इच्छा से कर रहे हैं। साम्य योग में उसे ईश्वरीय आज्ञा समझकर करना होगा। अपनी इच्छाओं को प्रभु के चरणों में समर्पित करना होगातथा उनकी आज्ञानुसार, इच्छानुसार चलन: होगा। धन, वैभव, सन्तान, पत्नी, स्वादिष्ट भोजन, उत्तम वस्त्र आदि का उपभोग करना चाहिए, सांसारिक व्यक्तियों की भाँति पूर्ण रूप से पूर्ववत् एवं यथावत् व्यवहार करना चाहिए किन्तु अपना समझकर नहीं, ईश्वर प्रदत्त एवं ईश्वर की समझकर समस्त कार्य उसी भावना के अधीन करने चाहिए। किसी कार्य में, पदार्थ में ममत्व न रहे, उसके लिए मन में अहंभाव न आवे, उसमें लिप्त होकर उपभोग न किया जाय, यही धर्म है। ●●●

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

क्षणिक ज्ञान

लोहा जब तक तपाया जाता है, तब तक लाल रहता है, लेकिन जब बाहर निकाल लिया जाता है, तब काला पड़ जाता है।यही दशा साँसारिक मनुष्यों की भी है। जब वे मन्दिरों में अथवा अच्छी संगति में बठते हैं, तब तक उनमें धार्मिक विचार भी रहतें हैं, किन्तु जब वे उनसे अलग हो जाते हैं तब वे फिर धार्मिक विचारों को भूल जाते हैं।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री मन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. न. UPHIN/2004/14568. सम्पादक : आचार्य व. (डॉ.) रामलाल शर्मा